हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९६ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

मन्त्र-कल्पतरु

(३)

'मन्त्र'-रूप 'शब्द-ब्रह्म' अन्तर्मुखी होने पर स्पन्दन आदि रूप में प्रतीत होता है। 'पूरक-योग' से 'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा'—प्राण का सञ्चय और कुम्भक से स्थिरता की प्राप्ति तथा अन्तर-रेचक से सुषुम्णा में प्रवेश—यही 'शक्ति' को चैतन्य करने का उपाय है। पूरक द्वारा शरीर में 'प्राण' का सञ्चय और कुम्भकावस्था में अपान के सङ्घर्ष से अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। इसी अग्नि से 'मन्त्र-शक्ति' जागृत होती है। कबीर साहब कहते हैं—

समुद्र लागी आगि नदियां कोयला भई। उठ कबीरा जाग मच्छी बिरछा चढ़ा गई।

अर्थात् प्राण-अपान के सङ्घर्ष में प्रदीप्त अग्नि द्वारा आत्म-शक्ति चैतन्य हुई और इडा-पिङ्गला आदि को प्राण-रूपी आहार न मिला। इससे विषय - वृत्तियां आदि जल गईं और आत्म-शक्ति कुल-वृक्ष सुषुम्णा-पथ से मेरु-दण्ड के शिखर 'सहस्रार' पर चढ़ गई।

यह प्रति ४-५० रु०/वार्षिक मूल्य ५० रु०

'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिए विशेष रियायती मूल्य पर महत्त्वपूर्ण तन्त्र-ग्रन्थ

१ महाकाल-संहिता (मूल मात्र : संस्कृत में)

काम-कला-काली-खण्ड,	मूल्य ६६)	काम-कला-काली-खण्ड,	रियायती मूल्य ८०)
गुह्य-काली-खण्ड—१	७०)	गुह्य-काली-खण्ड—१,	६०)
गुह्य-काली-खण्ड—२	६०)	गुह्य-काली-खण्ड— २,	५०)
गुह्य-काली-खण्ड— ३	४८)	गुह्य-काली-खण्ड— ३,	४०)

२ हिन्दी मन्त्र-महार्णव : देवी-खण्ड	२००)	रियायती मूल्य १६०)
" : देवता-खण्ड	२००)	१६०)
३ सप्तशती-सर्वस्व, मूल-मात्र	६०)	५०)
४ हिन्दी मन्त्र-महोदधि	२००)	१६०)
५ श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र, तीन भाग मूल	४५०)	३६०)
६ बृहत् तन्त्रसार, मूल-मात्र	१००)	८०)
७ नारद पञ्चरात्र, (हिन्दी अर्थ सहित)	१००)	८०)
८ सांख्यायन तन्त्र (हिन्दी अर्थ सहित)	२५)	२०)
९ प्राण-तोषिणी तन्त्र, दो भाग, मूल-मात्र	७५)	५०)
१० प्रपञ्चसार तन्त्र, मूल-मात्र	९५)	८५)
११ तन्त्रराज तन्त्र, मूल-मात्र	१००)	९०)
१२ शारदा-तिलक तन्त्र, मूल-मात्र	१२०)	११०)
१३ दुर्गा सप्तशती, संस्कृत की सप्त टीकाएँ	८०)	७०)
१४ शाक्त-प्रमोद (संस्कृत)	६०)	५५)

१५ श्रीमद्-देवी-भागवत (हिन्दी-पद्यानुवाद)

'श्रीमद्-देवी-भागवत' १८ पुराणों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। 'महा-शक्ति' की उपासना और महा-शक्ति के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित आख्यानों का जितना विशद वर्णन इसमें मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

'चण्डी' के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जाग्रत 'महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल' के प्रख्यात तन्त्र-साधक स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती के शिष्य और सुपुत्र श्री यमुनाप्रसाद जी ब्रह्मचारी ने अनेक वर्षों की साधना-स्वरूप शाक्तों के इस सर्वस्व 'श्रीमद्-देवी-भागवत' महा-पुराण का हिन्दी-पद्यानुवाद पहले पहल प्रस्तुत किया है।

आपका यह अनुवाद सरस और सहज है तथा इसके द्वारा 'श्रीमद्-देवी-भागवत' के बहुत से कठिन अंशों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इस हिन्दी-पद्यानुवाद से देवी के उपासकों को संस्कृत का ज्ञान न होते हुए भी विशेष ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।

अतः आज ही इस ग्रन्थ को मँगाकर नित्य पाठ, श्रवणादि से कृतार्थ हों।

(दो भागों में, मूल्य ३५०-०० रु०। चण्डी-सदस्यों के लिए रियायती मूल्य २८०-०० रु०)

प्राप्ति-स्थान—चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग, प्रयाग—२११००६ दूर-भाष : ५१४८३

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ५०] भाद्रपद, 'तारण' सम्वत् २०४८ वि० : सितम्बर, १९९१ [संख्या ६

१ माँ की करुणा अपार ! : मातृ चरणों का मधु-व्रत २
२ मातृ-चरणों का जवा-कुसुम : स्व० पण्डित गोविन्द शास्त्री जी दुगवेकर ९
३ माया के आश्चर्य-विधान : 'आम्नाय-धुरन्धर, आशु-कवि स्व० पं० हरि शास्त्री दाधीच ११
४ आगमोक्त उपासना : 'कौलाचार्य' पं० श्रीनथमल दाधीच, लक्ष्मणगढ़, सीकर (राज०) १४
५ तन्त्र-साधना में नारी : श्री भैरवानन्दनाथ, १०८ चकरा घाट, सागर (म० प्र०) १९
६ श्री-यन्त्र-साधना के कतिपय रहस्य : पं० ललिताप्रसाद शास्त्री, दतिया (म०प्र०) २१

मन्त्र - कल्पतरु

['चण्डी' की 'स्वर्ण-जयन्ती' के उपलक्ष्य में प्रकाशित विशेष लेख-माला । चैत्र, आषाढ़ २०४८ वि०–अप्रैल, जुलाई में प्रकाशित २१ निबन्धों (पृष्ठ ४८) के आगे का अंश । इसकी पृष्ठ-संख्या अलग है ।]

२२ गायत्री और महा-मृत्युञ्जय मन्त्र : परम पूज्य ॐ महाराज ४९
२३ नवार्ण-प्रकाश-गीतिका : 'आम्नाय-धुरन्धर' आशु-कवि स्व० पं हरिशास्त्री दाधीच ५०
२४ नवार्ण-मन्त्र की साधना : पण्डित कपिलनारायण मिश्र, आरा, भोजपुर (बिहार) ५१
२५ मन्त्र-जप-विधि : 'कौल-कौस्तुभ' स्व० पं० कालीचरण पन्त ५६

माँ की करुणा अपार !

मातृ-चरणों का मधु-व्रत

माँ की करुणा का पारावार नहीं। वह अहैतुकी है, सतत प्रवाहित होती रहती है। वह नित्य है, सर्वतो-मुखी है !

देवों और असुरों का किसी अति अतीत-काल में पूरे सौ सालों का युद्ध चला। देवता-गण हत-प्रभ हो गए और अपने-अपने स्थानों से गिरा दिए गए। पहले तो देव-गण खूब लड़े, पर जब बस न चला, तो विष्णु और महेश्वर के पास गए और सब मिलकर चिन्ता में लीन हो गए। निरवलम्ब देव-गण के उद्धार के लिए, माँ उनके ही अन्तर में तेजोरूपिणी महा-देवी के रूप में प्रकट हुईं। श्रीदेवी का असुरों से भयानक युद्ध हुआ। असुर-गण मारे गए, देव-गण का भय दूर हुआ, सारे जगत् में पुनः स्वाभाविक नियम यथा-विधि चलने लगा। देवता-गण परमानन्द में मग्न होकर श्री महा-देवी की प्रार्थना करने लगे। उनके आश्चर्य और कृतज्ञता की कोई सीमा नहीं रही। कैसे सङ्कट में वे पड़े थे—माँ का स्मरण भी तो उन्होंने नहीं किया, फिर भी वह अपने आप प्रकट हुई, उनका भय मिटाया और केवल उनका ही भय नहीं मिटाया, अपितु सारे विश्व के प्राणी-मात्र का भय मिटाया।

प्रार्थना करते हुए देव-गणों के मुँह से कैसे उद्‌गार निकलते हैं, देखिए—

दुर्गे ! स्मृता हरसि भीतिमशेष-जन्तोः, स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव-शुभां ददासि।

हे दुर्गे, भय-भीत आर्त-भाव से याद किए जाने पर तुम याद करनेवाले का ही नहीं, प्राणी-मात्र का भय दूर करती हो। (ऐसी तुम्हारी अनुपमेय करुणा की लहर लहराती है। यह हम देवताओं ने तो आँखों देखा।) और **जो स्वस्थ होकर तुम्हारा स्मरण करता है, उसे तुम अत्यन्त शुभ बुद्धि प्रदान करती हो, अर्थात् उसे सब कल्याणों की कुञ्जी ही सौंप देती हो !**

परन्तु इतना कहते-कहते देव-गणों को ऐसा लगा, जैसे कुछ भूल कर बैठे हों।

क्या तुम केवल स्मरण किए जाने पर ही दुःख हरती हो, भय मिटाती हो और कल्याण करती हो ? कैसी बात ! यह उस माँ की स्तुति हुई या अपमान हुआ ? यदि याद करने पर ही वह कल्याण करनेवाली हो, तब तो वह लौकिक माँ से भी न्यून ठहरेगी। नहीं, नहीं—यह तो बड़ी भूल हुई। इसलिए तुरन्त देवता-गण कहते हैं—

दारिद्र्य-दुःख-भय-हारिणि ! का त्वदन्या, सर्वोपकार-करणाय सदाऽऽर्द्र-चित्ता !

अरे नहीं, सबका उपकार करने में जिसका चित्त सदैव आर्द्र हो, वैसा तुमको छोड़कर कोई दूसरा कहाँ है ? इसलिए देव-गण उसे सम्बोधित करते हैं—**'हे दारिद्र्य, दुःख और भय को हरनेवाली !'** के नाम से। हाँ, ठीक ही तो है। प्राणी मात्र के उपकार के लिए उसका चित्त सतत द्रवित होता रहता है। सदा ही उसके मातृ हृदय से करुणामृत की धारा अपने-आप झरती हुई, सारे विश्व को प्लावित करती रही है। देव-गण उसको भूले हुए थे, फिर भी उसने प्रकट होकर उनका भय मिटाया। इसलिए वे उपकृत अनुभव करते हुए कहते हैं—**'तुम सबका उपकार करनेवाली हो !'**

देव-गणों को फिर आश्चर्य हुआ--'भला, जो **सर्वोपकार-करणाय सदाऽऽर्द्र-चित्ता**' है, उसके हाथों इन असुरों का विनाश क्यों हुआ ?' तो उनको यह समझ पड़ा कि यह विनाश का काम भी वास्तव में, उसकी सबका उपकार करने की दया-मयी वृत्ति का ही परिणाम मात्र था। असुरों का आसुर शरीर, उनसे नाना पाप-कार्य कराता रहेगा और जितना ही अधिक पाप वे करेंगे, उतना ही अधिक दण्ड और नरक-यातना उन्हें भोगनी पड़ेगी, इसलिए उनके आसुर जीवन का अन्त करने में भी उनके वास्तविक; चिर कल्याण की कामना ही उस जगज्जननी के हृदय में थी। साथ-ही-साथ, समस्त जगत् में सुख-शान्ति का राज्य पुनः स्थापित हो, यह उद्देश्य भी था।

परन्तु यह भाव भी उस अकारण करुणा-मयी के लिए शोभनीय नहीं जान पड़ता है। क्या इस के भीतर यह सम्भावना निहित नहीं है कि कदाचित् उससे किसी असावधान - क्षण में, किसी का अकल्याण भी हो सकता है ? क्या वहाँ ऐसी कल्पना या आशङ्का की गुञ्जाइश हो सकती है ? जिसके भीतर से यह सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जिसकी गोद में सब कुछ पल रहा है, जिसका दिया सञ्जीवन पाकर सब कुछ जीवित है और फिर जिसके अन्तर में ही सब कुछ चिर विश्राम भी पानेवाला है, उसके साथ किसी का कब कोई अनहित होना क्या कल्पनीय है ? वह तो सबके हित का भी परम-हित है !

तब हुआ क्या ? जिन्होंने उसे अन-हित रूप मान रखा था, जो उसके प्रति अन-हित रूप धारण किए थे, उनको वह रूप त्यागना पड़ा। क्योंकि उन असुरों का भी परम हित उससे बढ़कर और कौन हो सकता है ? सूर्य के सम्मुख जाते हुए अन्धकार का क्या काया-कल्प नहीं होता है ? सूर्य को क्या उस पर प्रहार करना होता है ? अन्धकार अपने तमस को छोड़ना नहीं चाहता, फिर भी उसे छोड़ना पड़ता है। भले हम कहें कि प्रकाश ने अन्धकार पर शस्त्र - प्रहार किया, उसके कल्याण के लिए ! सप्तर्षियों ने 'पार्वती' से कहा था, देखो तो 'शिव' ने 'काम-देव' को ही जला डाला ! तो पार्वती ने उत्तर दिया—

तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि शम्भु रहे सविकारा॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गए समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेश की नाई॥

गङ्गा में जो नालों का गन्दा जल गिरता है, उसे पुनीत करने में क्या गङ्गा को कुछ सोच-समझ कर प्रयास करना होता है ? वह तो माँ गङ्गा का सहज स्वभाव ही है।

खूब कहा--'**जगज्जननी सबका उपकार करनेवाली है !**' माँ सन्तान को दूध पिलाती है, उसका उपकार करने के लिए—किसी ने सुनी है ऐसी बात ? तब बात यह है कि देव - गण कृतज्ञता प्रकाश किए बिना रह भी नहीं सकते थे। दूध पीता हुआ बच्चा कनखियों से माँ की ओर निहार कर, अपने पर माँ के परम प्रसाद का अनुभव अभिव्यक्त नहीं करता है क्या ? यही तो स्नेह की अभिनव गूढ़ अनुभूति है !

फिर यह कैसा आश्चर्य है ? जिसकी इच्छा मात्र से अनन्त लोकों का एक पल में सृजन और दूसरे ही पल में लय हुआ करता है, उसे इन असुरों पर शस्त्र-प्रहार करना पड़े ? क्या वह अपनी तेजो-मयी दृष्टि से ही, उनका संहार नहीं कर सकती थी ? सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिसके नेत्र कहे जाते हैं, उसकी दृष्टि में असुरों का नाश करने की शक्ति न हो, क्या यह कभी सोचा भी जा सकता है ? अथवा उसके नयनों की ज्योति के आगे इन सूर्य, चन्द्र और अग्नि देवों की हो हस्ती क्या ? जिसके तेज से यह सब उद्भासित हो रहा है, उसके प्रभाव या क्षमता की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है !

देव-गण इस शङ्का के समाधान में कहते हैं—**'अहो, वह दया-मयी माँ चाहती है कि वे असुर भी उसके शस्त्रों के आघात से पुनीत होकर स्वर्ग-लोक को प्रस्थान करें !'** ऐसी बुद्धि अवश्य ही आश्चर्य-जनक और लोकोत्तर है। परन्तु जो सबकी माँ है, वह इससे भिन्न क्या कुछ और सोच भी सकती है ? असुर-गण, देवताओं की दृष्टि में अ-हित हैं, किन्तु उनके प्रति कोई प्रतिकूल भाव वह कैसे रख सकती है ? जो गलत रास्ते पर जानेवाला होता है, उस पुत्र के लिए तो माँ को और भी चिन्ता होती है। इसलिए **'लोकान् प्रयान्तु'**—वे स्वर्ग को जायँ, ऐसी बुद्धि उसकी होना अत्यन्त स्वाभाविक और सहज है।

आश्चर्य का विषय है तो यह है कि उसकी दृष्टि से वे पवित्र नहीं होते क्या ? उसके शस्त्रों के प्रहार में क्या बात है, जो वे असुर-गण उससे ही पवित्र हो सकते थे, उसकी तेजो-मयी दिव्य-दृष्टि की किरणों से नहीं ? यह सब बात मन में जँचती नहीं है । लड़ना कहाँ और शस्त्र - प्रहार से असुरों को पवित्र बनाना कहाँ ! यह सब एक बहाना मात्र ही लगता है।

क्या गङ्गा की पुनीत पतित - पावनी गोद में, जब नदी-नालों का जल गिरता है, तो कहा जायगा कि वह उनको गिराती है ? अथवा जब उनके गन्दे, दुर्गन्ध-युक्त और कड़वे जल को वह निर्मल, पवित्र और सु-मधुर अमृत-तुल्य बनाती है, तो कहेंगे कि उनके साथ वह लड़ाई करती है ? अरे, वह तो स्वयं सबसे नीचे - नीचे होकर बहती है कि उसकी बिछुड़ी बहनें उससे सहज ही आकर घुल-मिल जायँ !

उसी तरह माँ का असुर-गणों के साथ यह संग्राम एक बहाना था कि असुर-गण उसके निकट आवें—चाहे वह उस पर प्रहार करने के लिए ही क्यों न हो, क्रोधावेश और प्रति-हिंसा के भाव से ही क्यों न हो, एक बार उसके पास तो आवें, उसकी करुणामृत-वर्षिणी दृष्टि से अपनी आँखों को परितृप्त करें। माँ के अस्त्र, वह भी सन्तान के प्रति, स्नेह, करुणा, शुभेच्छा, सद्-भावना, ज्ञान, शान्ति, आनन्द के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं। अबोध, अज्ञान, फलतः अहंकार-पूर्ण जो है, उसके लिए माँ की मूर्ति दूर से भयावह लग सकती है; कारण दोनों का भाव-वैषम्य है। वह माँ को, माँ के रूप में पहचान नहीं पाता है। माँ, जो उसे शुद्ध, बुद्ध, दिव्य बनाना चाहती है, यह उसे अपने ऊपर शस्त्र-प्रहार-वत् ही लगता है।

प्रकाश अन्धकार पर प्रहार नहीं करता है, परन्तु अन्धकार वहाँ से डर कर भागने लगता है। अथवा यों कहें कि स्वयं ही प्रकाश-रूप हो जाता है। परन्तु इस रूपान्तर की क्रिया में ही द्वन्द्व का, सङ्घर्ष का आभास होता है। माँ के स्नेहास्त्र जिसे छूते हैं, उसका काय-कल्प हुए बिना रह कैसे सकता है ! परन्तु वह स्वयं उस पर यह सब लादना नहीं चाहती है। वह चाहती है, मेरी सन्तान मेरे पास आवे तो—स्नेह और उल्लास के साथ आलिङ्गन करने के लिए अथवा द्वेष और क्रोध के साथ उस पर शस्त्र-प्रहार करने के लिए ! माँ की अभिलाषा है कि हमारी सन्तान जो हमको भूल रही है, वह हमारी ओर मुँह तो करे, जरा आँखें भर कर हमको देखे तो, याद तो करे—उसके बाद ? उसके बाद माँ के स्नेहास्त्रों का जादू तो अपना काम करके ही रहनेवाला है।

इसलिए वह असुरों के आक्रमण का, शस्त्र - प्रहार का स्वागत करती है। द्वेष के अस्त्र का स्नेहास्त्र से, हिंसा के आयुधों का अहिंसा और प्रेम के आयुधों से। यह द्वन्द्व अपूर्व है, अभिनव और नित-नतन है। अथवा इसे 'द्वन्द्व-युद्ध' ही क्यों कहें, यह तो स्नेह के महा-समुद्र की उमड़ती हुई ज्वार से मलिन-

पंकिल क्षुद्र नदियों के जल का सम्मेलन-सा है। दोनों की लहरें टकराती हैं, एक दूसरे पर चढ़ती उतरती हैं, टूटती और बिखरती हैं—सारा दृश्य युद्ध का और भयानक सङ्घर्ष का सा दीखता है। परन्तु इसे युद्ध कहें या चिर से बिछुड़ी हुई सन्तति का आनन्द और स्नेह की मूर्ति-मयी माँ से स्नेहालिङ्गन कहें !

फिर देवता-गण सोचते हैं—'अहो, यह कैसा आश्चर्य है कि तुम्हारी तलवार से ज्योति की किरणें निकलती हैं, उसके तेज को उन असुरों की आँखें सह सकीं और तुम्हारे त्रि-शूल से जो प्रखर तेज की धारा निकलती है, उससे उनके नेत्र अन्धे नहीं हो गए ?' सचमुच बड़े आश्चय की बात है कि साधारण बिजली की कौंध और सूर्य की उन्मुक्त किरणों को जो आँखें सहन नहीं कर सकती हैं, वे आँखें विश्व का पल में प्रलय करनेवाली प्रचण्ड चण्डिका के हाथों में जो अमोघ आयुध हैं, उनके अतुलनीय तेज को सह सकीं ? उसके तेज का क्या कहना है ? **'त्वमेव भान्तं अनुभाति सर्वम्'**—उसके प्रकाश से ही तो सब प्रकाशित होता है ! तो उसके आयुधों के तेज को कौन सह सकता है ?

अतः देव-गण उत्प्रेक्षा करते हैं कि हो-न-हो, इसका कारण यह था कि वे माँ के मुख - चन्द्र को निहार रहे थे। ठीक ही तो है, माँ के मुख-मण्डल से करुणामृत की सतत धारा प्रवाहित हो रही थी, जो चतुर्दिक् फैलती हुई सृष्टि को सञ्जीवित करती रहती है। उसके मुख - मण्डल की पीयूष - रश्मियों का पान करनेवाली आँखें क्या कभी विलय को प्राप्त हो सकती हैं ? माँ तो यही चाहती है, उसकी सन्तान उसकी ओर निहारे तो, चाहे क्रोध से, रोष से, ईर्ष्या से या अभिमान से ? उसके मुख-मण्डल की करुणापूरित अतुलनीय शोभा को देख कर, मन के मैल क्या धुले बिना एक क्षण भी रह सकते हैं ? क्रोध के प्रबल आवेश से—माँ पर प्रहार करने के उद्देश्य से ही सही, असुर - गणों की आँखें माँ के अनिर्वचनीय शोभा-मय वदन-कमल पर ही तो लगी थीं। तो भला उनकी आँखों को किसी अन्य कारण से कैसे कोई हानि हो सकती थी ?

परन्तु देव-गणों को शङ्का हुई कि माँ के आयुधों के तेज से असुरों की आँख क्यों नहीं नष्ट हो गईं ? क्या यह एक दूसरी दृष्टि से असमीचीन नहीं लगता है ? माँ के आयुध मनुष्य की आँखें खोलनेवाले होंगे या फोड़नेवाले ? सोचिए तो ? माँ कहती है कि उसके समान ही उसकी सन्तान की आँखें भी दिव्य बन जायँ। इसलिए वह जिन आयुधों को धारण करती है, वे भी विष के बुझाए नहीं, करुणामृत से परिप्लुत होते हैं। इसीलिए तो उसके आयुधों का ध्यान-मात्र, प्राणी के अनेक भयों का तत्काल नाश करनेवाला होता है। फिर उनकी प्रत्यक्ष किरणों के संस्पर्श से असुरों की आँखें तो दिव्य-चक्षु में परिवर्तित हो गईं, जिसके प्रभाव से वे माँ का प्रत्यक्ष दर्शन कर कृत-कृत्य हो सके।

अबोध बालक माँ की अंगुलि में अञ्जन देखकर भयभीत होता है और रोने लगता है। उसे भय होता है कि अञ्जन उसे पीड़ा देगा और अंगुलि से आँखों को हानि पहुँचेगी। वह नहीं जानता है कि उस अञ्जन को लगाकर, माँ उसके आँखों का मैल मिटाना चाहती है तथा उसे निर्मल, स-तेज और स-बल बनाना चाहती है। उसी तरह माँ के हाथ में नाना-विध आयुधों को देखकर लोग भय-भीत होते हैं या तरह-तरह की आशङ्का की कल्पना करते हैं, किन्तु यह सब निराधार ही होता है। जो प्रेम और करुणा की स्रोतस्वती है, उससे द्वेष और प्रति-हिंसा कैसे निकल सकती है ? जो दिव्य - चेतन की खानि है, उससे जड़त्व कैसे प्रगट हो सकता है ? जो पूर्ण है, उससे अपूर्णता कैसे विकसित हो सकती है ? जो

आनन्द-सागर है, उसमें निरानन्द की तरङ्गें कहाँ से उठ सकती हैं ! जिससे सब कुछ भासमान हो रहा है, उससे किसी को अन्धकार कैसे मिल सकता है ?

रत्न के चाहे जितने खण्ड करो, किन्तु उन खण्डों में से हर एक रत्न ही रहेगा और हर एक ज्योति ही विकीर्ण करता रहेगा अथवा जैसे खाँड़ की तलवार और बन्दूक बनाएँ, तो भी वह माधुर्य ही देगी। वैसे ही माँ के हाथों के आयुधों की चाहे जैसे भी रूप - कल्पना की जाय, उससे प्रकाश, आनन्द, प्रेम और अमृत की ही रश्मियाँ निकलेंगी। इसलिए उनके संस्पर्श से असुरों की आँखों को भी नवीन ज्योति और जीवन ही मिल सकता था, अन्यथा नहीं।

अर्जुन ने भगवान् की अपने ऊपर अपार करुणा देखी, तो कहा—**देव ! जरा अपने विराट् रूप को तो दिखाइए।** तो भगवान् ने कहा—**इन आँखों से नहीं देख सकोगे। लो, मैं तुम्हें दिव्य-चक्षुओं का दान करता हूँ ताकि मेरी विभूतियों को देख सको—'दिव्यं ददामि ते चक्षु'** और यहाँ असुर-गण क्रोध तथा मद से अन्धे होकर माँ के ऊपर हिंसा के भाव से टूट रहे थे। माँ को इसमें रस मिल रहा था, बड़ा आनन्द आ रहा था। हमारे बच्चे आए तो इस बहाने भी हमारे पास और उसने युद्ध के बहाने अपने दिव्यास्त्रों की करुणामृत-सिक्त रश्मियों से उनकी मदान्ध आँखों को छूना शुरू किया और वे अनजान में ही उसके मुख-मण्डल की स्नेह-भरित आभा से उसकी ओर आकर्षित होने लगे। फिर तो उनके हाथों का अस्त्र-शस्त्र बेकार और बेकाम होनेवाला ही था।

देव-गण कहते हैं—**असुरों का संहार।** मैं कहता हूँ कि—**माँ के प्रेम की विजय हुई; असुरों का दिव्य काया-कल्प हुआ।** उन्हें माँ की गोद में शरण मिली। यह अद्भुत संग्राम हुआ।

देव-गण ने कहा—**'दुष्ट प्रवृत्तिवालों का (दुष्ट) वृत्त (चरित्र) शमन करने का तुम्हारा स्वभाव जैसा अचिन्तनीय है, वैसा ही तुम्हारा रूप भी अतुलनीय है और देवताओं के पराक्रम को हरनेवालों का हनन करनेवाला तुम्हारा तेजो-बल जितना आश्चर्य-जनक है, उतना ही शत्रुओं के प्रति दया दिखाना भी तुम्हारा समझ में नहीं आनेवाला है !'** सचमुच ही माँ की लीला ऐसी ही निगूढ़ होती है। इसलिए तो वह अघटन-घटना-पटीयसी महा-माया है।

वह तो सबकी माँ, अपनी माँ ठहरी ! देव-दानव, सुर-असुर, मनुष्य और व्याघ्र, साधु और दुर्जन—सभी उसकी सन्तान, उसके अपने अङ्ग से आविर्भूत हैं। वह तो सब पर समान रूप से करुणामृत धारा की सतत वर्षा करती, सबको अपनी गोद में रखे हुए स्तन-पान कराती रहती है। इसमें क्या कोई सन्देह हो सकता है ? वह अपने स्तन का दुग्धामृत दान न करे, तो कौन एक क्षण भी जीवित रह सकता है ? वह यदि धारण न करे, तो स्वयं यह सर्व-सहा वसुन्धरा ही बिखर बिला न जाती !

देवों और दानवों का समान रूप से कल्याण साधना हो उसका स्वभाव है। वह कब किसी के लिए अ-हित रूप बने। इसलिए जहाँ देवताओं का काम हुआ, वहाँ दानवों का भी कल्याण साधित हुआ। भेद इतना कि देवताओं ने उसे अपने अनुकूल माना और दानवों ने प्रतिकूल। इसलिए देवताओं को हर्ष हुआ, दानवों को भय। परन्तु जब दोनों ही उसकी ओर मुख किए हुए थे, तो दोनों को ही उसके करुणा-पूरित नेत्रों की कृपा-कोर का परम-प्रसाद तो मिलनेवाला ही ठहरा। तब देवताओं को आश्चर्य इसलिए हुआ कि वे अपने को उसका कृपा-पात्र मान रहे थे और असुरों को शत्रु ! और ऐसा मानना उनका समीचीन भी है क्योंकि स्वयं असुरों ने उसको अपना विरोधी मान लिया और उस पर शस्त्रों का साङ्घातिक प्रहार करना भी उचित समझा।

दुर्वृत्त-वृत्त-शमन और वैरि पर भी दया-प्रदर्शन, उस परम करुणा-मयी और शुद्ध सत्व-स्वरूपा माँ के पक्ष में ही सहज सम्भव है, जहाँ दूसरे के लिए ये कल्पना में न आनेवाली बातें हैं। वह निर्विकार और निर्वैर है, इसलिए उसकी ओर जो भी जायगा, वह निर्विकार और निर्वैर बनता चला जायगा। जैसे चुम्बक के क्षेत्र में जो लोहा पहुँचा, वह स्वयं ही चुम्बक बन कर रहा! यह बात दूसरे पत्थरों के लिए आश्चर्य-जनक और अचिन्तनीय हो सकती है, पर चुम्बक के लिए वही सहज स्वाभाविक है! उस माँ के लिए यह सब उसी प्रकार सहज स्वभाव सुलभ है।

अब रही उसके अपरूप-रूप और अमोघ - वीर्य की बात। देवता उसको देखकर आश्चर्य से अभिभूत हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या? देवताओं की दिव्यता का कारण वही है, यह बात इतने पर भी वे नहीं समझ पाए, यही आश्चर्य लगता है। उमा हैमवती की पुरानी कहानी भूल गए, तो यह उनका स्मृति-दोष ही कहा जायगा, परन्तु अपने-अपने अन्तर में से उसे निकलते देखकर भी वे क्यों न समझ पाए कि वही एक है, जिससे जो कुछ है, वह शोभा-युक्त और सशक्त है। तभी तो भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा था—**'जो कुछ जहाँ विभूति और श्री से युक्त देखो, समझ लो, वह मेरे तेज के अंश से उत्पन्न है!** 'तभी तो 'श्रुति' कहती है—**'तमेव भान्तं अनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'**

उसकी ही शोभा से सभी सुशोभित हैं और उसके आलोक से ही यह सब कुछ आलोकित हो रहा है। स्वयं शिव भी जिससे वि-युक्त होकर शव-रूप ही रह जाता है, तो औरों की क्या कथा?

देव-गण पुनः कहते हैं—**'तुम्हारे इस पराक्रम की उपमा किससे दी जाए? फिर तुम्हारा यह रूप कैसा अतुलनीय है कि, जो किसी को तो भय-भीत करता है और किसी को निर्मल बना डालता है? साथ ही युद्ध में शत्रु के प्रति बाहर से ऐसी निष्ठुरता और अन्तर में ऐसी कोमलता क्या कहीं दूसरी जगह भी आज तक त्रैलोक्य में देखी गई है? हे वर देनेवाली देवि! यह सब तुममें ही प्रत्यक्ष देखी जाती है, अन्यत्र नहीं।'**

माँ सभी शक्तियों का एक-मात्र उद्गम है! उसके पराक्रम की उपमा उस त्रैलोक्य में कहाँ मिल सकती है, जो स्वयं उसके उदर के एक छोटे-से कोने में पड़ा झूल रहा है और उसका रूप किसी को भय–एक समय—एक स्थान में ही देता है; इसमें आश्चर्य क्या? माँ तो सतत सबको अभय-दान देने के लिए हाथ उठाए खड़ी रहती है। अपनी सन्तान को सदा कहती है—**'मा भैः! मा भैः!' मत डरो, मत डरो!** उनका नाम ही अभयङ्करी है।

जो भय-रूप बनने की चेष्टा करता है, उसका अभीष्ट उसके सम्मुख जाने मात्र से विफल हो जाता है। यह देख वह भय-भीत हो जाता है। अभय के सम्मुख, भय को सहज-रूप से भय हो जाता है। इसीलिए कहा है कि **'भयानां भयम्'**—वह भय के लिए 'भय-रूप' है और **'भीषणं भीषणानाम्'**–भीषण के लिए 'भीषण-रूप' है। अर्थात् उसके सम्मुख भय का भयत्व और भीषण का भीषणत्व आप-से-आप तिरोहित हो जाता है।

सत् के सम्मुख असत् टिकता नहीं, आनन्द के सामने निरानन्द भाग खड़ा होता है और प्रकाश के आगे अन्धकार का पैर ही उखड़ जाता है। तो जिसने उसे 'आनन्द-रूप' माना, उसका आनन्द सहज में ही बढ़ने लगा और जिसने उसे 'भय-रूप' माना, उसके मन को सहज ही धक्का लगा। तब जो उसे भय देने की चेष्टा करे, उसकी दशा क्या होगी, यह सोचते ही बनता है।

'गीता' में भगवान् कृष्ण ने कहा कि जो मुझे जिस भाव से देखता है, मैं उसको उसी भाव से भजता हूँ अर्थात् उसके साथ उसी भाव से बरतता हूँ। इसीलिए कोई-कोई माँ की उपमा कल्प-लतिका से देते हैं। पर मेरे मन को यह जँचता नहीं। यह जैसे-को-तैसा भाव क्या किसी ने लौकिक माँ में देखा होगा ? तो जब लौकिक माँ भी अपनी सन्तान के लिए, जैसे-को-तैसा-भाव नहीं धारण कर सकती है, तो उस जगज्जननी के प्रति यह भाव कैसे लगाया जा सकता है ? हरे, हरे, किसने कभी किसी माँ को, अपनी सन्तान के प्रति यह कल्पना करते हुए भी देखा है कि, मेरा बच्चा जैसे मेरे साथ करेगा, मैं उसके साथ वैसा ही करूँगी ? माँ और यह लेन-देन व मोल-तोल ?

माँ के बारे में तो शङ्कराचार्य की ही उक्ति फबती है—**कु-पुत्रो जायेत क्वचिदपि कु-माता न भवति।** पुत्र भले ही कु-पुत्र हो जाय, परन्तु माता कभी कु-माता नहीं होती है। माँ और सन्तान के लिए कु-माता—यह कल्पना भी असङ्गत, असम्भव और असत्य है।

कल्प-लतिका तो माँगने से देती है और वह देती है, जो माँगनेवाला माँगे। परन्तु वह तो सतत सन्तान का कल्याण-चिन्तन और कल्याण-साधन ही करती रहती है। वह तो शुद्ध सत्त्व, सत्, प्रकाश, आनन्द, तेज और बल की अनन्त निर्झरिणी है, कभी न सूखनेवाली सरस्वती है ! माँ-माँ ही है ! माँ की उपमा कहाँ मिल सकती है--वह भी निश्चय ही विश्व-जननी की ?

माँ की तो यह विशेषता है कि वह अयोग्य, अबोध, अस्वस्थ सन्तान के लिए अधिक आतुर, अधिक कातर रहती है। देखिए तो, असुरों के साथ उसने कितना लीला-विलास दिखाया-देवताओं की रक्षा तो अनायास हुई, उसका सारी ध्यान और प्रयास तो असुरों के ही उद्धार के लिए हुआ न ? किस तरह उनके दुष्ट-भाव को दिव्य-भाव में उसने परिणत किया ? इसे 'करना' भी क्या कहें—माँ का ऐसा ही सहज स्वभाव, धर्म या गुण और प्रभाव ही ठहरा।

इसीलिए देव-गण कहते हैं कि देखो तो एक ओर असुर का उत्पीड़न दूर होने से त्रैलोक्य की रक्षा हुई, दूसरी ओर संग्राम में निहत होकर वे असुर भी ऊर्ध्व-वर्ती लोकों में पहुँचाए गए और तीसरा हम लोगों का भय भी दूर हुआ--ऐसी त्रि-विध घटना एक साथ हुई ! असुरों ने देवताओं का स्वर्ग छीना था, वह स्वर्ग देवताओं ने पाया और असुर-गण और भी ऊपर के लोकों में पहुँचा दिए गए। माँ ने अपने भटकते हुए पुत्रों को गोद में उठा लिया। यह सब देखकर देव-गण आश्चर्य-चकित हो उसके आगे नत-मस्तक हो रहे हैं।

आइए, हम भी उनके स्वर-में-स्वर मिलाकर माँ के चरणों में अपना मस्तक नत करें।

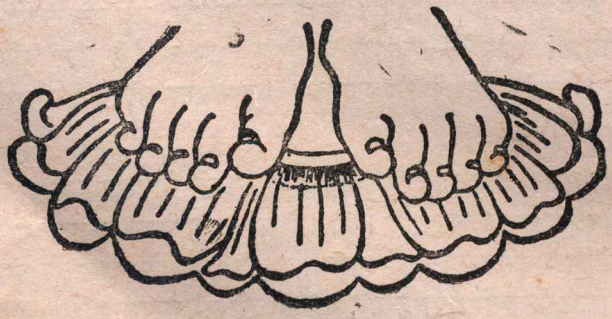

मातृ-चरणों का जवा-कुसुम

माँ ! तुम अनादि होकर भी आद्या हो। तुम्हीं से चराचर विश्व का विस्तार हुआ है। तुम निर्गुण होकर भी सगुण हो। सर्वत्र तुम्हारे त्रिगुणों का ही विलास देख पड़ता है। तुम अलिप्त-निःसङ्ग होने पर भी घट-घट में व्याप्त हो रही हो। तुमको वेद भी नहीं जान सके, मैं अबोध नारी कैसे जान सकूँगी ? सिद्ध योगि-जन मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, योग, याग, तप, भजन, पूजन आदि साधनों के द्वारा तुम्हारी महिमा को —तुम्हारे वैभव को जानकर तुम्हारी लीलाओं का गान करते हुए कृतार्थ हो जाते हैं, परन्तु मैं तो कुछ नहीं जानती।

तुम भक्तों के प्रति अहैतुक कृपा करती हुई स्नेह किया करती हो। इसी विश्वास से तुम्हारे चरणों में अपने को न्योछावर कर देना और अपने क्लेशों को निवेदन कर देना जान गई हूँ, परन्तु मेरे पास भाषा नहीं, शब्द नहीं, भाव नहीं, साधन नहीं ! कैसे निवेदन करूँ ? भूख - प्यास लगने पर बच्चा माँ का स्मरण करता है, परन्तु मैं तो तुम्हें भूल जाती हूँ ! फिर अपने हृदय की प्यास कैसे बुझाऊँ ?

माँ ! मैं क्लेश अनुभव करती हूँ, परन्तु भाषा कहाँ, जिससे उसे प्रकाशित कर सकूँ ! जो टूटी-फूटी भाषा है, उसके सहारे प्रकाशित करूँ भी, तो सुननेवाला कौन है ? समझाऊँ भी, तो समझनेवाला कहाँ है ? दुःख प्रकट करने के लिये भाषा नहीं। 'छोटे मुँह बड़ी बात' कोई पसन्द नहीं करता, तो मैं छोटी—टूटी-फूटी भाषा के द्वारा अपना बड़ा दुःख कैसे सुनाऊँ ?

दुःख से हृदय फटा जाता है, उसके टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं, उससे व्याकुल हो जाती हूँ, परन्तु यह नहीं जान पाती कि दुःख है क्या ? देख रही हूँ कि शरीर क्षीण हो रहा है, बल घट रहा है, छाती फटी जाती है, प्राण छट-पटा रहे हैं, परन्तु रोग क्या है और क्लेश का स्वरूप क्या है, इसका पता नहीं। अपने क्लेशों को जब मैं स्वयं नहीं समझ पाती, तब दूसरा कोई कैसे समझेगा और क्या इलाज करेगा ? जब यातनाओं से व्यथित होती हूँ, तो शान्ति के लिए तुम्हारे चरणों का चिन्तन करने को उत्सुक हो जाती हूं, परन्तु शरीर साथ नहीं देता। मन मारे पड़ी-पड़ी ही तुमको पुकारा करती हूँ। तुम सुनती होगी, परन्तु क्लेश नहीं घटता। लोक-लज्जा और तुम्हारा मुझ पर सौंपा हुआ कर्तव्य ऊपर से गला दबाता है।

तुम्हारे चरणों का ही ध्यान करने में समय बिताऊँ, तो गृहस्थी का काम—अपना कर्तव्य कैसे निबाहूँ ? इसके अतिरिक्त लोगों से यह उपहास भी सहना होगा कि बड़ी 'भगतन' बनी है ! यदि यह कहूँ कि संसार (जीवन) असार है, तो वह भी ठीक नहीं। दुःखों, क्लेशों का अनुभव स्वयं करती हूँ, तो

उनके विद्यमान होते हुए जीवन को असार कैसे कहूँ ? संसार में दुःखों की तरह सुखों का भी अस्तित्व है, परन्तु सुखों को भूल जाती हूँ और दुःखों का स्मरण कर कलपती रहती हूँ। यह मेरी समझ में नहीं आता कि सुखी लोग ही दुःख भोगते हैं या दुःखी ही सुख के अधिकारी हैं ! समझदार लोग मुझे पागल कहते हैं, परन्तु इसका निर्णय कैसे करूँ कि पागल ही समझदार होते हैं या समझदार ही पागलपन करते हैं।

माँ ! मैं क्लेश पा रही हूँ, इसमें तुम्हारा क्या दोष ? तुम तो जीव-मात्र पर सुख की—आनन्द की वर्षा करती रहती हो। तुम्हारी कृपा का पार नहीं। तुम्हारी करुणा का स्रोत देखकर हृदय गद्‌गद हो जाता है। जो तुमको हृदय से, भक्ति-भाव से, एक बार भी स्मरण करता है, तुम उसी की हो जाती हो, उसी को अपना लेती हो। तुम्हारा रूप देखकर हृदय द्रवित हो जाता है और आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगते हैं। मैं तो तुम्हारी लाड़ली बेटी हूँ। मुझे क्यों क्लेश दोगी ?

जब तुम्हारा चिन्तन-भजन करने बैठती हूँ, तो शरीर काम नहीं देता और शारीरिक क्लेश के कारण ही मन तुम्हारे चरणों में नहीं रमता। तब कुछ-कुछ समझने लगती हूँ कि शरीर ही आत्मा की भारी उपाधि है। जब तक यह रहेगा, तुम्हारे पास पहुँचने में अन्तराय बना मेरे और तुम्हारे बीच में परदा डाले रहेगा, परन्तु उपाय क्या है ? जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो। जैसा रखना चाहो, रक्खो। मैं तो तुम्हारी हो चुकी। चाहे बिगाड़ दो या बना दो।

माँ ! मैं तो केवल तुम्हारे प्रेम की—भक्ति की प्यासी हूँ। मेरे अन्तर की छोटी-सी प्याली अपनी प्रेम-सुधा से भर दो। मधु-मक्षिका जिस प्रकार बूँद-बूँद मधु बटोर अपना छत्ता भर लेती है, उसी प्रकार मेरे अन्तःकरण का प्याला बूँद-बूँद करके भक्ति के मधु से भर दो। वही तुम्हारे पास पहुंचने की यात्रा के लिए मेरा पाथेय होगा। देखो, वे खिलती हुई जवा-कुसुम की कलिकाएँ झूम-झूम कर तुम्हारी अपार महिमा को प्रकट कर रही हैं। इन्हें देखकर मन प्रसन्न हो उठता है। उनमें से किसी एक को तोड़कर जब मैं तुम्हारे पवित्र चरण-कमलों में चढ़ाती हूँ और वे खिल उठती हैं, तब प्रतीत होता है कि तुम खिलखिला कर प्रसन्न हो रही हो—हँस रही हो। उनके विकसित रूप को देखकर मुझे ईर्ष्या होती है और मन-ही-मन खीजती हूँ कि मैं भी जवा की एक कली क्यों नहीं हुई ? वे कितनी भाग्य-शालिनी हैं, जो तुम्हारी प्रसन्नता का कारण बन रही हैं। जी चाहता है कि मैं जवा की एक कली बन जाऊं, परन्तु क्या करूँ ? देहोपाधि से जकड़ी हुई होने के कारण ऐसा करने में असमर्थ हो रही हूँ।

माँ ! मेरी यही अभिलाषा है कि तुम्हारी कृपा से जब यह उपाधि छूट जाय, तब तुम मुझे अपने उद्यान का जवा-कुसुम ही बना लेना। मैं जगत् में पूर्ण विकसित होकर झूमती हुई तुम्हारी महिमा का प्रचार करूँगी और तुम्हें प्रसन्न करती रहूँगी। तुम्हारी चरण-रज में लोट-पोट कर अपने जीवन को सार्थक करूंगी और भक्ति-रस से परिप्लुत होकर तुम्हारे मङ्गल-मय चरण-कमलों के स्पर्श से निरन्तर कृत-कृत्य होती रहूँगी।

माँ कहो, सच कहो कि क्या तुम मेरा मनोरथ पूर्ण करोगी ? क्या मुझे अपने चरणों का जवा-कुसुम बना लोगी ?

माया के आश्चर्य-विधान

आम्नाय-धुरन्धर, आशु-कवि स्व० पं० हरि शास्त्री दाधीच

जगदम्ब ! तुम्हारी समझ पड़ी नहिं माया, क्या-क्या अचरज दिखलाया ।। टेक ।।

मूल प्रकृति गुण - रूप धर सब जग की जननी आप हुईं,
अंश-कला से तनु धर हरि-हर-विधि की घरनी आप हुईं,
नाद-कला अव्यक्त प्रणव बन तुम्हीं मन्त्र - जप जाप हुईं,

स्वेच्छा से चेतन-रूप धार तत्त्वों की प्रेरक आप हुईं । कैसा गुण-जाल बिछाया ।।१ टेक

सृष्टि-स्थिति-संहार - कार्य में उन्हें प्रेरणा करतीं आप,
वे तुमसे बल वैभव पाते, उनका सङ्कट हरतीं आप ।
उनमें रहकर उनके बाहर रूप निराला धरतीं आप ।

तीन, पाँच, नौ, सोलह, बीस, पचीसों बीच बिचरतीं आप, क्या अद्‌भुत खेल रचाया ।।२ टेक

पूर्ण अखण्डानन्द परात्मा तुमने व्योम रचा कैसे ?
निराकार तुमने बाहू बिन विस्तृत इसे किया कैसे ?
रूप - रहित भी इसको तुमने कैसे अपना रूप दिया ?

पाँचों में प्रधान बतलाया, सर्व - व्याप्त अनन्त किया । आधार बिना ठहराया ।।३ टेक

श्वास-रूप मारुत को तुमने कैसे चञ्चल अचल किया ?
और हवा से हे विश्वेश्वरि ! कैसे उद्‌गत अनल किया ?
तथा अग्नि से जल, जल से फिर कैसे भू को अटल किया ?

घन चेतना-शक्ति अपनी दे इसको सन्तत सबल किया । सब महा-भूत कहलाया ।।४ टेक

पञ्चीकरण हेतु फिर इनके कैसे भाग बनाती हो ?
एक - एक में पाँच - पाँच दे सर्व-प्रपञ्च रचाती हो ?
विश्व चराचर रङ्ग - विरङ्गा चित्र-विचित्र सजाती हो ?

पर्वत पशु-पंछी तरु-लतिकाओं का ढङ्ग-जँचाती हो । सबमें गुण-भाव भराया ।।५ टेक

पञ्च महा - भूतों के गुण - मय अंशों से रचीं इन्द्रियाँ,
प्राण बनाए कैसे दश - विध कैसी रचीं मन - वृत्तियाँ ?
मन मति चित्त अहंकृति चारों अन्तःकरण जने कैसे ?

माया और अविद्या ये दो प्रकृति विभेद बने कैसे ? कैसे प्रतिबिम्ब बनाया ।।६ टेक

ईश्वर और जीव जन - जन में कैसे भिन्न बनाए माँ ?
एक - एक का अंश रूप कर फिर कैसे विलगाए माँ ?
स्त्री - तनु से ही पुरुष प्रकट कर द्वैताद्वैत दिखाए माँ ?
कर्म-जाल के तन्तु जगत् में कैसे प्रबल बनाए माँ ? भेद कुछ समझ न पाया ।।७ टेक

तनु पर प्राणी का चर्म मढ़ा टाँके का कर्तव्य किया नहीं,
आँख कान मुख कण्ठ कुहर कर दिए वर्मा लिया नहीं,
हाड़ - हाड़ का जोड़ जुड़ाया गोंद लगाया कभी नहीं,
दाँत और नख रोम उगाए बीज बताया कहीं नहीं । साँस पर साँस चलाया ।।८ टेक

हर तनु में रोके प्राण रखे साँकल-रस्सी नाम नहीं,
हाँ आग नियत की उदर बीच पर पड़ा फूँक काम नहीं ।
तन के माफिक दे खान-पान लेती हो एक छदाम नहीं,
रात-दिवस सब काम चले पर कार्यालय का काम नहीं । क्या प्रबन्ध करवाया ।।९ टेक

रङ्ग - रङ्ग के फूल बनाए दिखलाती हो रँग - साज नहीं,
हरे - भरे बन सजे भूमि पर जिनका कुछ अन्दाज नहीं ।
पान - पान पर काट - छाँट की रखी न कैंची पास कहीं,
नपा - तुला सब देह बनाया बाट-तराजू पास नहीं । कैसा अन्दाज लगाया ।।१० टेक

निशि-दिन रवि-शशि की ज्योति जले पर दिखती धुआँधार नहीं,
पृथ्वी को विरचा गोल-गोल पर रखा हाथ परकार नहीं ।
नभ में नक्षत्र विचरते हैं पर उनके पाद-प्रचार नहीं,
मारुत वस्त्रादि उड़ाते हैं कर उनके भी दो-चार नहीं । सामर्थ्य अनूप दिखाया ।।११ टेक

सुनते हैं साँप सभी बातें उनको देती हो कान नहीं,
मृग मोर बाघ रङ्गीन रचे रखती कर में रङ्ग-दान नहीं ।
आते - जाते हैं जीव पर होने देती हो भान नहीं,
छिन-छिन में देह बढ़ाती हो रखती हो यन्त्र-विधान नहीं । पटुता का पार न पाया ।।१२ टेक

घटी यन्त्र सम इस तनु में नस-नस करतीं काम सही,
उपराम नहीं होता क्षण भी चाबी भरने का नाम नहीं ।
पानी में जगत बसाती हो गलता सड़ता है चाम नहीं,
सबके जगती है भूख-प्यास पर दिखता इनका धाम नहीं, बहु-भाँति अन्न उपजाया ।।१३ टेक

आकार अनेक प्रकार रचे पर हाथ हथोड़ा लिया नहीं,
सब अङ्ग समान रचे सबके पर मिलता जोड़ा किया नहीं ।
पैदा जग धान समान किया हल बैल कहीं भी साथ नहीं ।
खुद इसे पालतीं गैरों को देने देती हो हाथ नहीं । संहार - भाव दरसाया ।।१४ टेक

फल पुण्य-पाप का यथा-समय देतीं करती हो भूल नहीं,
क्या कहूँ अधिक माँ ! आप बिना इस जग का कोई मूल नहीं ।
जिसमें न आपकी सत्ता हो ऐसा कोई फल-फूल नहीं,
हो तुम्हीं विश्व के कण-कण में तुमसे कोई प्रति-कूल नहीं । व्यापक प्रभाव फैलाया ।।१५ टेक

भूतों का भूत गुणों का गुण तुम ही हो सबका सार सही,
मानस को निर्मल करती हो देतीं साबुन या खार नहीं ।
मन में विवेक भर देती हो जिसकी न टूटतो धार कहीं,
सत्-चित्-संवित् आनन्द-रूप हो तुममें कोइ विकार नहीं । यह सभी वेद में गाया ।।१६ टेक

पृथ्वी में तुम हो व्याप्त शिवे ! पर इसे तुम्हारा ज्ञान नहीं,
जल में रस-रूप तुम्हीं हो माँ ! पर इसे तुम्हारा भान नहीं ।
तुम्हीं अग्नि की ऊष्मा हो यह उसको अनुसन्धान नहीं,
हो वेग वायु में तुम ही पर मारुत को इसका ध्यान नहीं । अव्यक्त तन्त्र प्रकटाया ।।१७ टेक

आँखों की आँख तुही है मां ! कानों का कान तुही तो है,
रसना की रसना तुम्हीं देवि ! नाकों की नाक तुही तो है ।
मन का मनन बुद्धि का बोधन, चित का चेत तुही तो है,
अहङ्कार का अहङ्कार वेदों का वेद तुही तो है । निज को सर्वत्र बसाया ।।१८ टेक

तुम नियति-रूप हो मां ! तो भी तुमको नियमों का बन्ध नहीं,
कर्त्ता की कृति हो तुम्हीं स्वयं तुम पर कर्मों का फन्द नहीं ।
गुण-वान् गुणी की गुणना हो रखतीं गुण का कुछ गन्ध नहीं,
तुम पर-ब्रह्म की स्फुरणा हो तुम बिन जग में आनन्द नहीं । यह सभी तुम्हीं से आया ।।१९ टेक

आपामर विधि-हरि-हर तक को देती हो तुम ही ज्ञान सही,
अम्ब ! तुम्हारी आज्ञा को देते ये शिर पर स्थान सही ।
करते सब काम नृपालों की आज्ञा से दास समान सही ।
प्रभुता पाते हैं तुमसे तुमको कहते विश्व-निदान सही । जग-मूल तुम्हीं हो माया ।।२० टेक

आगमोक्त उपासना

श्री नथमल जी दाधीच, श्री भुवनेश्वरी महा-शक्ति पीठ, लक्ष्मणगढ़ (राजस्थान)

'तटस्थ लक्षण' और अति पवित्र तन्त्रोक्त साधना

भारतवर्ष में तान्त्रिक विद्यानुसार अबाध रूप से साधना होती रही है। तान्त्रिक मत से साधना करने पर आज भी शीघ्र फल-प्राप्ति होती है। तान्त्रिकों ने ऐसे सहज और सरल उपायों का आविष्कार किया है, जिनसे मनुष्य साधना-मार्ग में सुगम रीति से अग्रसर होता रहे। 'शिव-विरचित तन्त्र-शास्त्र' अत्युत्तम उज्ज्वल मार्ग दिखाता है। वह केवल स्थूल भोग के लिए है, ऐसा सोचना भी महा-पाप है। जिन तन्त्र-शास्त्रों में मद्य, मांस आदि विषयोपभोग की कथा लिखी है, उनके लेखक उच्च कोटि के ब्रह्म-ज्ञानी और दूर-दर्शी थे, यह सदा स्मरण रखना चाहिए।

'महा-निर्वाण तन्त्र' में परम योगी महा-देव से आद्या-शक्ति भगवती कहती हैं : 'हे देवों के देव, महा-देव ! आप देव-गण के गुरुओं के गुरु हैं। आपने जिस परम-ब्रह्म की कथा कही है एवं जिनकी उपासना से मनुष्य को भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं, वह परमात्मा किस प्रकार प्रसन्न हो सकता है ? हे देव, उनके साधन तथा मन्त्र का क्या स्वरूप है ? उस परमात्मा का ध्यान क्या है ? एवं विधि क्या है ? मैं इसका रहस्य-तत्त्व सुनना चाहती हूँ। अतः कृपया उसका वर्णन करिए।' सदा-शिव ने उत्तर में कहा : 'हे प्राण-वल्लभे, गुह्य से भी गुह्य सच्चिदानन्द पर-ब्रह्म को **'तटस्थ लक्षण'** द्वारा ही जाना जा सकता है।'

उक्त शिवोक्ति से स्पष्ट है कि 'स्वरूप-लक्षण' द्वारा ब्रह्म का लक्षण जानने पर भी साधारण मनुष्य उसे अधिगम्य नहीं कर सकता। 'तटस्थ लक्षण' द्वारा आराधना करने पर ही उस ब्रह्म को जाना जा सकता है। 'तटस्थ लक्षण' की ही साधना शिवोक्त तन्त्र द्वारा प्रवर्तित हुई है। अतः तन्त्रोक्त साधना अति पवित्र है। उसमें मोक्ष-प्राप्ति का सहज उपाय प्रस्तुत है।

अति उत्कृष्ट तथा परिपूर्ण पद्धति--'तन्त्र-साधना'

'तन्त्र - शास्त्र' विज्ञान है, रसायन है अथवा योग है—इस सम्बन्ध में किसी की भी मति इस बात को स्थिर करने का अधिकार नहीं रखती। 'तन्त्र - शास्त्र' की समीक्षा करने पर मुग्ध तथा विस्मयाविष्ट ही होना पड़ता है। मन कहता है कि जिन्होंने इतने उच्च ज्ञान-विज्ञान की सीढ़ी पर आरोहण किया है, वे कोई मानव नहीं थे, वास्तव में देवता ही थे। 'तन्त्र' का विज्ञान—'तन्त्र' का अभावनीय और अलौकिक व्यापार सम्पूर्ण देखने से निश्चय ही यह जाना जा सकता है कि यह मानव द्वारा आविष्कृत नहीं। वास्तव में देवों के देव परम योगी शिव के कहे हुए तन्त्रों का ही प्रचार हो रहा है।

'तन्त्र' में जो सकल विषय लिखे हुए हैं, उनकी परीक्षा करने के लिए अधिक प्रयास की आवश्यकता भी नहीं क्योंकि—तन्त्रोक्त साधना-प्रणाली से शीघ्र ही फल-प्राप्ति होती है। यथा-विधि अनुष्ठान करने की शक्ति हो, तो केवल एक रात्रि में ही शिव-साधना से ब्रह्म-प्राप्ति हो—सकती है। तन्त्रों में स्पष्ट कहा है कि **'कलि के मनुष्य अल्पायु तथा अल्प-चित्त होंगे। उनके द्वारा कठोर साधना सम्भव नहीं। इसलिए इस मत का प्रचार किया गया है।'** तन्त्र अज्ञान के अन्धकार से पूर्ण कु-क्रिया की पद्धति नहीं

है, अपितु यह भोगासक्त जीव को भोग-मार्ग देकर निवृत्ति-पथ में सहज चलाने की अति उत्कृष्ट तथा परिपूर्ण पद्धति है। यदि आज समस्त धर्मों को विज्ञान की कसौटी पर कसा जाय, तो एक 'तान्त्रिक' धर्म ही ऐसा है, जो खरा उतर सकता है। आदि - धर्म होने से वही विश्व-कल्याण करने का गर्व कर सकता है। यही वह महान् पन्था है, जिससे पूर्व समय में भिन्न - भिन्न मार्ग प्रगट हुए तथा अन्त में इसी राज-मार्ग में विलीन हो गए। आज के युग में हिन्दू - धर्म यदि जीवित रह सकता है, तो 'तन्त्र-धर्मानुसार' ही रह सकता है। यह एक महान् सत्य है, जिसका किसी प्रकार अपलाप नहीं किया जा सकता।

चारों वेदों का सार---'तन्त्र-शास्त्र'

'तन्त्र-शास्त्र' वेद से भिन्न नहीं है, न 'तन्त्र' वेद के विरुद्ध है। शाखा-भेद से 'वेद' में भी जैसे भेद होता है, वैसे ही 'वेद' तन्त्र का ही भेद है। कुलूक **भट्ट** कृत 'मनु-स्मृति' की टीका में 'वैदिकी' तथा 'तान्त्रिकी'—द्विविध श्रुतियों का उल्लेख है। 'तन्त्र-शास्त्र' वेदान्त का परिशिष्ट है। वस्तुतः 'तन्त्र' वेद ही हैं। 'छान्दग्योपनिषद्' में 'पञ्चामृत - विद्या' का वर्णन है। उसमें सूर्य-बिम्ब को 'देव-मधु' की संज्ञा दी गई है और वह अपनी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की चार दिशाओं की किरणों द्वारा ब्रह्माण्ड में 'मधु-रस' का प्रवाह करता है। पूर्व दिशा की किरणें **'ऋग्वेद'**-रूपी पुष्प का रस खींचती हैं और उसके मधु से वसु देवता अग्नि द्वारा तृप्त होते हैं। दक्षिण दिशा की किरणें **'यजुर्वेद'** के पुष्प-रस को आकर्षण करती हैं और उससे उत्पन्न अमृत से रुद्र देवता इन्द्र द्वारा तृप्त होते हैं। पश्चिम दिशा की किरणें **'साम-वेद'** के पुष्प-रस को खींचती हैं और उसके अमृत से आदित्य देवता वरुण द्वारा तृप्त होते हैं। उत्तर दिशा की किरणें **'अथर्व-वेद'** के पुष्प-रस को खींचती हैं और उसके द्वारा मरुत देवताओं की सोम द्वारा पुष्टि होती है।

विद्या-रूपी 'अमृत' के आधार-पुष्प ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम-वेद और अथर्व-वेद में अवस्थित हैं और उनके सार को भगवान् सूर्य अपने बिम्ब में खींचकर उससे वसु, रुद्र, आदित्य और मरुत—इन देवताओं के गण-अनुक्रम से अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम—इन चार अध्यक्षों द्वारा 'मधु-रस' का भोग कर तृप्त होते हैं। इन चार मुखों वाले ब्रह्म-देव को चारों वेदों का प्रवर्तक माना गया है, परन्तु उसी उप-निषद् में सूर्य के ऊर्ध्व-मुख का भी वर्णन है क्योंकि यह अव्यय श्रुतियों में 'पञ्च-कल' प्रतिपादित हुआ है। उसकी किरणें 'परो-रजा' कहलाती हैं क्योंकि उसमें रजो-गुण का स्पर्श नहीं है। उसकी किरणें गुह्य आदेश को ब्रह्म-तत्त्व के पुष्प में से खींचती हैं, और उसका जो मधु होता है, उसको सिद्ध-जन 'प्रणव' (ॐ) द्वारा भोगते हैं।

इस गुह्य आदेश को **'आगम' (तन्त्र)** कहते हैं। जो चारों वेदों में प्रगट आदेश हैं, उसे ही **'निगम'** कहते हैं। आगम-वादी इस ऊर्ध्व-मुख को परमेश्वर का 'पञ्चम मुख' कहते हैं और वह ऊर्ध्व-स्रोत द्वारा ब्रह्म - विद्या चारों वेदों में ही समाप्त नहीं हो जाती, परन्तु देश - काल और निमित्तों के परिवर्तन में युगानुसार सिद्ध-जनों द्वारा प्रगट होती है। इसीलिए 'माण्डूक्य उपनिषद्' को आगम-प्रकरण कहते हैं।

आगम (तन्त्र) चारों वेदों का सार है तथा परात्पर है। व्यक्ति-गत, स्वार्थी तथा धर्मान्ध ठगों द्वारा यह महान् सत्य 'मध्य-युग' में अपने-अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए दबोचा गया था।

शाक्त-धर्माचार्यों की सामयिक शिथिलता से इनको और भी आश्रय मिला। अन्ततः किसी-न-किसी रूप में समस्त धर्माचार्यों ने इसको ग्रहण कर तन्त्रों का शिष्यत्व स्वीकार किया। यह एक कटु सत्य है। किसी को अरुचिकर भी हो सकता है, परन्तु उपाय भी क्या है। सत्य कठोर ही होता है! सत्यान्वेषी व्यक्ति अगर विशेष रूप से मनन करे, तो यह बात आसानी से समझी जा सकती है तथा सन्तोष भी हो सकता है।

तान्त्रिक साधना का विश्लेषण

अब तान्त्रिक साधना का किंचित् मात्र विश्लेषण करते हैं। वेद में **'प्रणव मन्त्र'** की उपासना होती है। जैसे—**तस्य वाचकः प्रणवः** (पातञ्जल दर्शन)। **अ-उ-म** इन वर्णों का योग—ब्रह्मा, विष्णु, शिव होता है। **'क्लीं'** शब्द से **'श्रीकृष्णाय भगवते गोपी-जन वल्लभाय नमः'** का प्रतिपादन होता है। **'प्रणव'** का चिन्तन करने से त्रि-गुणों की त्रि-मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, शिव का चिन्तन होता है। त्रि-गुणों का एक बार में चिन्तन करना आसान नहीं, यह अधिकांश स्थलों में असम्भव हो जाता है। इसलिए 'तन्त्र' में अधिकारी भेद से एक-एक देव तथा देवी की मूर्ति का ध्यान करने की व्यवस्था प्रकाशित की गई है।

वेदोक्त मन्त्र—'ॐ' शब्द आसानी से बोलना सबके लिए सम्भव नहीं, किन्तु **'तान्त्रिक प्रणव'** तथा अन्यान्य बीज-मन्त्रादि सहज ही उच्चारित होते हैं। 'तन्त्र-शास्त्र' सर्व-साधारण के लिए साधना की व्यवस्था देता है, ताकि अशिक्षित लोग भी आसानी से अधिकार प्रयोगानुसार साधना कर सकें। अधिकार-भेद तथा उपासना के पृथक्-पृथक् भेद हिन्दू शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं। स्त्री, शूद्र इत्यादि को 'वेद' का अधिकार नहीं दिया गया, उन लोगों के लिए भी तन्त्रों की साधना प्रस्तुत है। जो 'वेद' के अधिकारी थे, वे लोग भी समय-गति से 'वेद-पन्थ' को अति-क्रम करके 'तान्त्रिक साधना-पद्धति' द्वारा साधना करने लगे। इसीलिए ब्राह्मणादि में भी तन्त्र-शास्त्र को अधिक आदर प्राप्त है।

प्रकृति के विकार अर्थात् परिणाम द्वारा विश्व-व्यापार सम्पन्न होता है। फलतः 'सांख्य दर्शन' में आदि कारण 'प्रकृति'-शब्द से उल्लिखित है। 'प्रकृति' का कर्तृत्व वेद-सम्मत है। यहाँ 'सांख्य दर्शन' के नाम से यह न समझ लिया जाय कि शाक्तों का सिद्धान्त भी सांख्य की तरह द्वैत-वाद है! बल्कि शाक्त-वाद सांख्य व वेदान्त के 'अद्वैत-वाद' (माया-वाद) से सूक्ष्म एक विलक्षण 'अद्वैत-वाद' है। 'प्रकृति' की उपासना, 'सत्य-युग' से आज तक होती आ रही है। 'सत्य-युग' की मार्कण्डेय मुनि प्रणीत 'चण्डी' में 'प्रकृति' का कर्तृत्व अति विस्तृत रूप से वर्णित है। यथा—**नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततं।**

यही महा-विद्या नित्या, जन्म-मृत्यु-रहित-स्वभावा, जगत् का आदि कारण है; यह ब्रह्माण्ड ही उसकी मूर्ति है! उससे यह संसार विस्तृत है। 'त्रेता-युग' में 'शक्ति-तत्त्व' वर्णित है। राम, सीता उपनिषद् में भी 'शक्ति-तत्त्व' वर्णित है। यथा (राम-तापनी उपनिषद्)—

श्रीराम-सान्निध्य-वशात्, जगदानन्द-दायिनी। उत्पत्ति-स्थिति-संहार-कारणं सर्व - देहीनाम्।
सा सीता भवती ज्ञेया, मूल-प्रकृति-संज्ञिता। प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति, वदन्ति ब्रह्म - वादिनः॥

अर्थात् राम के सान्निध्य से जगत् का आनन्द प्रदान करनेवाली तथा सर्व-प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय करनेवाली सीता को 'मूल प्रकृति' जानो। जब सीता, प्राण के साथ अभेद को प्राप्त हो, उस समय ब्रह्म-वादी उसे 'महा-शक्ति' कहते हैं।

'श्रीभगवद्-गीता' में भी शक्ति का कर्तृत्व वर्णित हो रहा है। जैसे—

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः, सूयते स-चराचरं । हेतु-मानेन कौन्तेय ! जगद् विपरी वर्तते ।।

हे कौन्तेय ! मेरे अधिष्ठान द्वारा यह प्रकृति सह चराचर जगत् को प्रसव करती है तथा हमारे अधिष्ठान-जन्य ही जगत् नाना रूप से उत्पन्न होता है । यहाँ 'मयाऽध्यक्षेण' शब्द को लेकर शक्ति को गौण नहीं समझा जा सकता । कारण यहाँ 'प्रकृति' शब्द सामान्य प्रकृति-वाचक है । शाक्त- सिद्धान्तानुसार यह प्रकृति—'महा-शक्ति' का एक अंश है । कृष्ण इत्यादि दशावतारों की उत्पत्ति दश-महा-विद्याओं से हुई है, इसमें संशय नहीं । जैसे—**विष्णु-शरीर-ग्रहणमहमीशान एव च । (चण्डी)**

इस विषय में प्रकाण्ड तान्त्रिक तथा विख्यात शाक्त-दर्शनाचार्य पूज्य - पाद श्रीभास्कराचार्य ने त्रिपुरा महोपनिषद्, वरिवस्यादि तथा सेतु - बन्धादि भाष्यों में विवर्त-वादियों द्वारा लगाए गए आक्षेपों का विशद - रूप से, प्रबल युक्ति - प्रमाणों से खण्डन किया है । जिज्ञासुओं को उन ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए ।

'तन्त्र' को प्रधान देवता---'प्रकृति देवी'

चितिः स्वतन्त्रा विश्व सिद्धि-हेतुः—वेद-वेदान्त के उप-क्रम उप-संहार द्वारा भी यही प्रगट होता है कि वेदान्त का लक्ष्य महा-शक्ति ही है और शक्ति-वाद वेदान्त का मुकुट-मणि है । शिव और शक्ति के मध्य में **सर्व-शक्ति—समस्त धर्म-समूहात्मिका शक्ति** ही जगत्-कर्त्री है । जगत्-कर्तृत्व प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध होने से शङ्का से रहित है । 'शिव' के मौजूद होने पर भी फल-प्रदान शक्ति-अधीन है, कारण 'शक्ति' स्वतन्त्र है । 'भागवत्' में कहा है—

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं, सा वै पालयतेऽखिलम् । इच्छया संहरत्येषा, जगदेतच्चराचरम् ।।
न विष्णुर्न हरो नेन्द्रो, न ब्रह्मा न च पावकः । नार्को न वरुणः शक्ताः, स्वे - स्वे कार्ये कथञ्चन ।।
तथा युक्ता हि कुर्वन्ति, स्वानि कर्माणि ते सुराः । कारणं सर्व - कार्येषु, प्रत्यक्षेणावगम्यते ।।

उपर्युक्त शास्त्र-वचन से प्रकट है कि 'प्रकृति' जगत् की पैदा करनेवाली है । यही 'प्रकृति देवी', 'तन्त्र' की प्रधान देवता है और वही तन्त्रोक्त अन्य देवताओ का केन्द्र है । तन्त्रों में देव एवं देवी उभय की ही उपासना-विधि बताई गई है । भारत-वर्ष में महा-शक्ति की साधना, मुख्यतः तन्त्रोक्त प्रणाली द्वारा ही सुचारु रूप से सञ्चालित है । 'शाक्त' लोग पुरुष-उपासना को गौण स्थान देते हैं । इससे 'अद्वैत की भावना' भङ्ग नहीं होती । कहा है—**सर्व-रूप-मयी देवी, सर्वं शाम्भवी-रूपम् ।** आदि ।

तात्पर्य यह कि 'पुरुष' भी--'शक्ति' ही है । 'शक्ति' के बिना वह हिल - डुल ही नहीं सकता । लिङ्ग-भेद से वस्तु-भेद नहीं हो सकता । कारण एक ही शब्द (स्त्री - लिङ्ग) शब्दानुशासन की रीति से भिन्न-भिन्न अर्थों (लिङ्ग) में प्रयुक्त हो सकता है । जैसे दार, कलत्र, गृहिणी तीनों शब्द एक स्त्री-वाचक होने पर भी त्रि-लिङ्गों में व्यवहृत हुए हैं । मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, ब्रह्म हूँ इत्यादि उपनिषद्-वाक्यों द्वारा भी यही प्रगट होता है ।**'सर्वं खलु इदं शक्ति, नेह नानास्ति किञ्चन'**—इत्यादि व अन्य प्रमाणों द्वारा भी इसकी पुष्टि की जा सकती है ।

'तन्त्र'---देव-देवी की अति सु-कौशल-पूर्ण उपासना-प्रणालियाँ

भगवान् श्रीकृष्ण 'गीता' में 'योग' को—**कर्म का कौशल** कहते हैं । तद्-रूप 'तन्त्र-शास्त्र' में भी देव-देवी की सु-कौशल-पूर्ण उपासना-प्रणाली योग-शास्त्र-विद्यानुसार विधि-बद्ध है । 'तन्त्र - शास्त्र', देश-

भेद से नाना प्रकार के आचारों तथा भावों का प्रकाश करता है। किसी-किसी तन्त्र में 'गुप्त-साधना' की कथा भी प्रकाशित है। जो मनुष्य जिस रूप, आचार और भाव एवं जिस साधना का अधिकारी है, वह तदनुरूप अनुष्ठान करने पर ही फल प्राप्त करता है। जन्म-जन्मार्जित पुण्य के प्रभाव से जिनकी 'कुलाचार' में वासना होती है, वे लोग 'कुलाचार' का अवलम्बन कर, आत्मा को पवित्र करके साक्षात् महाशक्ति-स्वरूप होते हैं।

'कुलाचार' में भी कई शाखाएँ हैं, जैसे--पूर्व कौल, उत्तर कौल, योगिनी कौल, सिद्ध कौल इत्यादि। इनमें पूर्व कौलों का सिद्धान्त तो इतना पवित्र है कि कोई निन्दनीय चर्चा तो दूर रही, बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जो अत्यन्त सत्य एवं जगत्-मान्य हैं। पूजा में द्रव्यों का भी अनुकल्प है तथा भूर्ज व स्वर्ण-रचित श्री-यन्त्र में नव-योनि-मध्य की प्रधान योनि में भगवती की अर्चा होती है। उदाहरणार्थ 'परानन्द सम्प्रदाय' में, जिसके विषय में लोगों का बहुत कम ज्ञान है, 'पशु-बलि' का सर्वथा निषेध है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि 'कुलाचार' को अन्य पूजा-परिपाटियाँ इसको अपेक्षा गौण हैं। वह भी अधिकारानुसार उतनी ही सत्य हैं, जितनी कि उपर्युक्त। जिस समय 'भोगों की विस्तृति' होती है, उस समय 'योग' की सम्भावना नहीं और जब 'योग' होता है, उस समय 'भोगों का अभाव' होता है—किन्तु 'कुलाचार' में प्रवृत्त होने पर 'भोग' और 'योग' उभय ही हस्त-गत किया जा सकता है।

चण्डी की पुरानी दुर्लभ फाइलें

'चण्डी' वर्ष ३८ [१९७९-८०] अङ्क ४ से १२ ३०-००

'चण्डी' वर्ष ३९ [१९८०-८१] ५०-००

'हिन्दी कुलार्णव तन्त्र' और गो-तन्त्र विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४० [१९८१-८२] ५०-००

शाक्त-धर्म-विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४१ [१९८२-८३] ५०-००

'हिन्दी - महानिर्वाण तन्त्र' एवं 'श्रीकमला-कल्पतरु' विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४२-४४ [१९८३-८६] ५०-००

'स्वर-विज्ञान' विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४५ [१९८६-८७] ३५-००

'चण्डी' वर्ष ४६ [१९८७-८८] ५०-००

'पूजा-रहस्य', 'श्रीभुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी' विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४७ [१९८८-८९] ५०-००

'चण्डी' वर्ष ४८ [१९८९-९०] ६०-००

'चण्डी' वर्ष ४९ [१९९०-९१] ६०-००

तन्त्र-साधना में नारी

श्री भैरवानन्दनाथ अध्यक्ष, शाम्भवी तान्त्रिक शोध-संस्थान, १०८ चकरा घाट, सागर–२ (म० प्र०)

स्त्रियो देव्यः स्त्रियः पूज्याः, स्त्रिय एव हि भूषणम् ।।

वृथा न्यासं वृथा पूजा, वृथा जापो वृथा स्तुतिः । वृथा स-दक्षिणो होमो, यद्यप्रिय-करः स्त्रियः ।।

अर्थात् स्त्री ही देवी, स्त्री ही पूजनीय और स्त्री ही आभूषण है । जो स्त्रियों को प्रिय नहीं है, वह अथवा उसका न्यास, पूजन, जप, स्तुति और दक्षिणा-दान-पूर्वक किया गया हवन आदि सभी व्यर्थ है । (काली-तन्त्र एवं वृहन्नील-तन्त्र)

नारी को इतना ऊँचा स्थान देनेवाली एक - मात्र शक्ति - साधना ही है । तान्त्रिक साधना में 'वीराचार' में दीक्षित होने पर साधक को 'शक्ति - साधना' का अधिकार मिलता है । इसमें साधक को स्त्री के प्रति देवी-बुद्धि रखकर उपासना करनी होती है । यहाँ स्त्री 'भोग्या' नहीं, अपितु साक्षात् इष्ट-देवी होती है । स्त्री को मोक्ष-मार्ग में बाधक माननेवालों के लिए 'शक्ति-साधना' के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है । तान्त्रिक उपासना का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमें बिना शक्ति (स्त्री) के काम चल सके । शिव-वचन है (कामाख्या-तन्त्र)––

शक्ति-मूलं साधनं च, शक्ति-मूलं जपादिकम् । शक्ति-मूला जपाश्चैव, शक्ति - मूलं च जीवनम् ।।
ऐहिकं शक्ति - मूलं च, परत्र शक्ति-मूलकम् । शक्ति - मूलं तपस्सर्वं, चतुर्वर्गस्तथा प्रिये ! ।।
शक्ति-मूलानि सर्वाणि, स्थावराणि चराणि च । अज्ञात्वा पापिनो देवि ! रौरवं यान्ति निश्चितम् ।।

अर्थात् सभी प्रकार की साधनाओं, जप-तप, जीवन, ऐहिक और पारलौकिक कर्मों, चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष), स्थावर (एक स्थान पर जमा हुआ, अचल, अडिग, अचर, निश्चेष्ट) तथा चर (हिलने-डुलनेवाला, गति-शील) आदि सभी के मूल में 'शक्ति' ही है । जो ऐसा नहीं जानता, वह पापी है और निश्चय ही रौरव नर्क में जाता है ।

यही सब बातें इष्ट-देवता के प्रति मानी जाती हैं, तो उस पर-ब्रह्म की साधना जब हम स्त्री-रूप में करते हैं, तब **'स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु'**––इस महा-वाक्य को ध्यान में रखते हुए संसार की सभी स्त्रियों में पूज्या शक्ति की भावना रखनी ही होगी । तभी कल्याण होगा क्योंकि–**'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः'** 'मनु-स्मृति' में और 'कामाख्या-तन्त्र में––

शक्त्यं यद् दीयते देवि ! तत् तु देवार्पितं भवेत् । सफलं तत्कर्म सकलं, सत्यं सत्यं कुलेश्वरि ! ।।

उक्त अनुभूत उक्तियों द्वारा यही बताया गया है कि 'जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहीं देवता का वास होता है । शक्ति (स्त्री) को जो भी दिया जाता है, वह देवता को ही अर्पित होता है और (तभी) हे कुलेश्वरि ! उस (साधक) के सभी कार्य सफल होते हैं––यह सत्य है ।'

इस प्रकार साधना में 'स्त्री' अनिवार्यतः आवश्यक मानी गई है । वह साधना में सहायिका है, इष्ट देवता-स्वरूपा है, अतः पूजनीया है । शक्ति के बिना तो उपासना हो ही नहीं सकती । 'महा-काल संहिता' में स्पष्ट कहा है—

कृतायां शक्ति - पूजायां, सफलं नित्य - पूजनम् । अकृतायाममुष्यां तु, निष्फलं नित्य - पूजनम् ।।

तस्माद् यत्नेन सम्पूज्या, शक्तिर्नित्यार्चनादनु ।।

अर्थात् शक्ति-पूजा करने से नित्य-पूजन सफल होता है और न करने से निष्फल होता है । इस-लिए यत्न-पूर्वक नित्यार्चन में शक्ति-पूजा करनी ही चाहिए ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तान्त्रिक साधना में अकेली 'शक्ति-पूजा' से ही सब कुछ नहीं मिल जाता । 'शक्ति' अर्थात् 'स्त्री' के चार और सहायक हैं--१ मद्य, २ मांस, ३ मत्स्य और ४ मुद्रा । इन सभी के बिना पूजन **'पूजन'** नहीं होता । **'पञ्च-मकार'** देवता-प्रीति-कारक कहे गए हैं । इसी से विद्वान् (साधक) लोग देवता की प्रीति प्राप्त करने के लिए इनका विधि - पूर्वक सेवन करते हैं । जगदम्बा की पूजा सदा **'पञ्च - मकारों'** से करे, 'शक्ति' अर्थात् स्त्री (अपनी स्त्री या श्रद्धेया स्त्री) के बिना जप न करे ।

'पशु-भाव' में 'पञ्च-मकार' पूर्णतया वर्जित हैं क्योंकि इस भाववाला साधक काम - क्रोधादि आठ पाशों से बँधा होता है । पश्वाचारी को प्रातः-स्नान, दिन में पूजन, ऊन के आसन का प्रयोग, रुद्राक्ष-माला के द्वारा जप और श्रौत-स्मार्त धर्म में दृढ़ रहकर उपासना करनी होती है । **'पञ्च-मकारों'** से पूजन करना उसके लिए निषिद्ध है । पूर्ण ब्रह्मचर्य से उसे रहना होता है । जब **'पशु - भाव'** का साधक **'वीरा-चार'** या **'वाम-मार्ग'** में आता है, तब उसे स्नान - शौचादि के नियम अनिवार्य नहीं होते । किसी भी समय वह पूजन कर सकता है । विशेष-रूप में रात्रि में ही वह पूजन करता है । सभी वर्ण उसके लिए समान होते हैं । उसे **'पञ्च-मकार'** से ही पूजन करना पड़ता है ।

'शक्ति-साधना' में सहायिका वही स्त्री हो सकती है, जो तन्त्रोपासना में **'दीक्षित'** हो, अन्यथा उपासना निष्फल तो होती ही है, अनर्थ भी हो सकता है । अतएव दीक्षिता, देवता में भक्ति रखनेवाली, काम-क्रोध आदि अष्ट-पाशों से मुक्त और मन्त्र-जप में लगी रहनेवाली स्त्री के साथ ही साधना करे । जिस प्रकार पुरुष के लिए दीक्षा अनिवार्य है, उसी प्रकार स्त्री के लिए भी 'दीक्षा' आवश्यक है ।

शाक्तोपासना ही एक-मात्र ऐसी है, जो स्त्री पशु-पक्षी आदि को भी पूज्य बनाता है । फिर मानव स्त्री का क्या कहना ! 'कुल-चूड़ामणि तन्त्र' में कहा है--**पशु, नर और पक्षि-शक्ति का पूजन करने से वे विगुण (फल-हीन) कर्म को भी सगुण (फल-दायक) कर देती हैं--**

पशु-शक्तिर्नर-शक्तिः, पक्षि - शक्तिस्तथैव च । पूजिता विगुणं कर्म, सगुणं कारयेत् ततः ।।

एक-मात्र शाक्तोपासना ही है, जो छुआछूत और जात-पाँत से ऊपर ले जाती है । अन्त्यजों को भी पूज्य बनाती है । जहाँ वैदिकादि मत मात्र त्रि-वर्णों और पुरुषों तक ही सीमित हैं, वहाँ शाक्त - मत सभी को समान अधिकार देता है । जातीय व्यवस्था में एकदम अस्पृश्य रजकी (धोबिन), नटी, चाण्डा-लिनी, कपाली, वेश्या, नापिता आदि को तान्त्रिक साधना में परम पूजनीया और उच्च-स्तर की सिद्धि-दात्री माना जाता है । इसी से स्पष्ट है कि 'तन्त्र-साधना' में **'नारी'** को कितना श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है ।

श्री-यन्त्र-साधना के कतिपय रहस्य

* पण्डित ललिताप्रसाद शास्त्री, दरोगा गली, तिगैलिया, दतिया (म० प्र०)

बुद्धिमान् मनुष्य कल्याणकारी कार्यों में प्रवृत्त होता है तथा अनिष्ट - कारी कार्यों से बचना चाहता है। मनुष्य आदि - काल से आत्मा को जानने में संलग्न है। आत्मा का ज्ञान 'ब्रह्म - विद्या' के साक्षात्कार से ही सम्भव है। **'श्री-यन्त्र'** की साधना ही 'ब्रह्म-विद्या' है। 'विद्या' दो प्रकार की है—'परा' और 'अपरा'। 'अपरा'-विद्या कर्म-काण्ड-विषयक है और 'परा-विद्या' है ब्रह्म-स्वरूपिणी। 'ब्रह्म - विद्या' के भी दो भेद हैं—१ स्थूल और २ सूक्ष्म। स्थूल-विद्या का निरूपण उपनिषद् आदि में है। सूक्ष्म - विद्या प्रणव-रूपा है। इसमें सूक्ष्म-विद्या की ही प्रधानता है। प्रणव - स्वरूपिणी (ॐकार - रूपिणी) विद्या ही वीज है। वेद-पुराण-स्मृति-काव्य आदि इस 'वीज' से ही प्रादुर्भूत 'वृक्ष'-स्वरूप हैं। परमात्मा ही ॐ-कार है। इसी की साधना से मनुष्य को भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। 'ब्रह्म-विद्या' का ही नाम श्री-विद्या है, जो समस्त प्रपञ्च का शमन करके साधक को आत्म-लाभ कराती है—**'अहं ब्रह्मास्मि'** का बोध करा देती है।

'ब्रह्म-विद्या'-स्वरूप **ॐकार** तीन मात्राओं (अकार, उकार, मकार) से युक्त है। इसी प्रकार 'श्रीविद्या-स्वरूप' **ईंकार** भी तीन विन्दुओं से युक्त है। इस प्रकार दोनों में अभेद है। जिस प्रकार **ॐकार** का ब्रह्म-विद्यात्व श्रुति - सिद्ध है, उसी प्रकार **'ईंकार'** का भी है। **'ईंकार'** में तीन विन्दु हैं—रक्त, शुक्ल एवं मिश्र। यही कुण्डलिनी है। इसी को **'काम - कला'** कहते हैं। यही ईंकार 'श्रीविद्या'-स्वरूपिणी है, जिसका ध्यान करने से मनुष्य सब पापों से रहित होकर सब प्रकार के भोग प्राप्त करता है।

भगवती 'श्रीविद्या' का ही नाम 'त्रिपुर-सुन्दरी' है। यह ब्रह्मा, विष्णु और शिव को पैदा करने-वाली है। तीनों लोकों का लय करनेवाली है। यह 'त्रिपुर-सुन्दरी देवी' त्रिकोण-रूपा है। जब परा-विन्दु का विकास होता है, तब यह 'त्रिकोण' व्यक्त होता है, जिसमें तीन ही विन्दु रहते हैं। इनका मूल - मन्त्र भी तीन ही वीजों (**ऐं क्लीं सौः**) से युक्त है। प्रथम वीज 'वाग्भव' है, द्वितीय वीज 'काम - राज' है तथा तृतीय 'शक्ति-वीज' कहलाता है।

'श्री-चक्र' में नव त्रिकोण हैं। नीचे के पाँच त्रिकोणों की अधिष्ठातृ देवियाँ हैं—१ वामा, २ ज्येष्ठा, ३ रौद्री, ४ अम्बिका और ५ परा-शक्ति। ऊपर के चार कोणों की शक्तियाँ हैं—१ इच्छा, २ ज्ञान, ३ क्रिया और ४ शान्ता। यही सब मिलकर नव त्रिकोण होते हैं। ऊपर के त्रिकोण शिव-स्वरूप हैं तथा नीचे के त्रि-कोण शक्ति-स्वरूप। त्रैलोक्य-मोहनादि चक्र से विन्दु-पर्यन्त नव-चक्रों में भग-वती त्रिपुर-सुन्दरी का निवास है। 'श्रीचक्र' भगवती का ही स्वरूप है। नौ चक्रों में समस्त वर्ण व्याप्त हैं। जैसे स्वर, क-वर्ग, च-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग, प-वर्ग, य-वर्ग, श-वर्ग और ल-वर्ग। नौ चक्रों को नौ योगि-नियाँ अधिष्ठातृ देवियाँ हैं। इनके भी बहुत से भेद हैं, जिनके ध्यान आदि तन्त्र - शास्त्र में दिए हैं। जबलपुर में श्रीचक्राकार शिखर का जो मन्दिर है, उसमें इन योगिनियों की मूर्तियाँ यथा-स्थान स्थापित की गई हैं।

'श्रीचक्र' के नौ चक्र हैं—१ विन्दु, २ त्रिकोण, ३ अष्ट-कोण, ४-५ दो दशार, ६ चतुर्दश-कोण, ७ अष्ट-दल, ८ षोडश-दल और ९ भूपुर-त्रय। इनके क्रमशः नाम हैं—१ सर्वानन्द-मय, २ सर्व-सिद्धि-प्रद, ३ सर्व-रोग-हर, ४ सर्व-रक्षा-कर, ५ सर्वार्थ-दायक, ६ सर्व-सौभाग्य-दायक, ७ सर्व-संक्षोभण, ८ सर्वाशा-पूरक और ९ त्रैलोक्य - मोहन। इन नौ चक्रों की नौ अधिष्ठातृ देवियाँ हैं—१ त्रिपुरा, २ त्रिपुरेश्वरी, ३ त्रिपुर-सुन्दरी, ४ त्रिपुर-वासिनी, ५ त्रिपुरा-श्री, ६ त्रिपुर-मालिनी, ७ त्रिपुरा - सिद्धा, ८ त्रिपुराम्बा और ९ महा-त्रिपुर-सुन्दरी। इनके ध्यान भी तन्त्र-ग्रन्थों में दिए हैं। भगवती के पूजन में नौ मुद्राओं का विशेष महत्त्व है। इन मुद्राओं का प्रदर्शन चक्र-पूजन में किया जाता है, जिससे भगवती प्रसन्न होती हैं। ये मुद्राएँ निम्न - लिखित हैं—१ संक्षोभण, २ द्रावण, ३ आकर्षण, ४ वश्य, ५ उन्माद, ६ महांकुश, ७ खेचरी, ८ वीज और ९ योनि। इन मुद्राओं का रचना-प्रकार 'मुद्राएँ एवं उपचार' नामक पुस्तक से जान सकते हैं। ये मुद्राएँ भगवती के वाम-भाग में रहती हैं।

भगवती के दक्षिण भाग में 'अणिमा' आदि नौ सिद्धियों का निवास है। इनका पूजन भी 'चक्रार्चन' में होता है। शक्ति 'त्रिकोण'-स्वरूपिणी है और 'विन्दु'-रूप शिव हैं। 'विन्दु' एवं 'त्रिकोण' का अविना-भाव-सम्बन्ध है। 'कामेश्वरी'-युक्त परम शिव का निवास 'विन्दु' में है। परम शिव प्रकाश-स्वरूप हैं। 'समयाचार' - मत के अनुसार शिर में स्थित चन्द्र - मण्डल ही 'श्री - चक्र' है। वह षोडश-कलात्मक है। वहीं 'विन्दु' में सुधा - सिन्धु है, जिसमें शिवाकार मञ्च पर महा-त्रिपुर-सुन्दरी विराजमान हैं। उसी चक्र से साधक को 'अमृत' की प्राप्ति होती है। चवालिस कोणों से युक्त 'श्री-चक्र' ही देवी का मन्दिर है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उनके भृत्य हैं। कुण्डलिनी-शक्ति वहीं अमृत - वर्षा करती है। चन्द्र-मण्डलात्मक 'श्री-चक्र' ही भगवती के चरण-किरणों से अलंकृत प्रकाश-स्वरूप 'विन्दु' है। इसी की उपासना साधकों को अभीष्ट है।

'मूलाधार' और 'स्वाधिष्ठान' का प्रथम खण्ड है, जो 'अग्नि' का स्थान है। यही 'रुद्र - ग्रन्थि' है। 'मणिपुर' और 'अनाहत' का द्वितीय खण्ड है, जो 'सूर्य' का स्थान है। यही 'विष्णु - ग्रन्थि' है। 'विशुद्धि' और 'आज्ञा-चक्र' का तृतीय खण्ड है, जो 'चन्द्र' का स्थान है। यही 'ब्रह्म-ग्रन्थि' है। त्रि-खण्डों का यह आरोह-क्रम है। अवरोह-क्रम में सोम (चन्द्र), सूर्य और अग्नि के क्रम से जानना चाहिए। ये 'श्री-चक्र' के अन्तर्गत हैं। इन सबकी कलाओं का वर्णन भी तन्त्र में विस्तार से दिया है।

भगवती त्रिपुर-सुन्दरी 'काम-कला'-रूपिणी हैं। 'ईकार' ही 'काम - कला' है। ईकार में नीचे जो दो विन्दु हैं, वे भगवती के स्तन हैं। ऊपर का विन्दु मुख है। ये तीन विन्दु ही सोम, सूर्य एवं अग्नि-स्वरूप हैं। इसी में समस्त वर्ण आ जाते हैं। ईकार में नीचे जो त्रिकोणाकार है, वही 'योनि' है। जो साधक 'काम-कला' का यह रहस्य जान लेते हैं, वे भगवती से तादात्म्य प्राप्त कर लेते हैं।

महेश्वर 'प्रकाश'-स्वरूप हैं, जो 'विमर्श'-शक्ति में प्रवेश कर विन्दु - भाव धारण कर लेते हैं। 'विमर्श' शक्ति भी स्वान्तर्गत 'प्रकाश'-विन्दु में प्रविष्ट होती है। तब विन्दु में संक्षोभण होता है। वही 'विन्दु' सृष्टि-काल में त्रिकोणाकार हो जाता है। विन्दु-नाद-स्वरूप प्रकाश-विमर्श का शरीर 'अहं' होता है। 'विन्दु' और 'नाद' में से एक विमर्श है 'रक्त-विन्दु', दूसरा प्रकाश है 'शुक्ल-विन्दु'। इनके मिलने से बना 'मिश्र-विन्दु' सर्व-तेजो-मय परमात्म-स्वरूप है। ये तीन 'विन्दु' ही कामेश्वर के साथ अविना-भाव-सम्बन्ध से रहनेवाली भगवती महा-त्रिपुर-सुन्दरी हैं और वही 'काम-कला' हैं।

'कौल-मत' में त्रिकोण ही विन्दु - स्थान है। वही योनि है। वहाँ स्थित कुण्डलिनी - शक्ति को कौलिनी कहा जाता है। प्रत्यक्ष 'म'-पञ्चक के द्वारा ही भगवती की आराधना करते हैं और कुण्डलिनी-जागरण को ही मुक्ति मानते हैं।

'समय-मत' में भगवती के साथ पञ्च-विध साम्य मानते हैं—१ अधिष्ठान-साम्य, २ अनुष्ठान-साम्य, ३ अवस्था-साम्य, ४ रूप-साम्य और ५ नाम-साम्य। 'समय - पूजक' को 'समयाचारी' कहते हैं। उनके चार भेद हैं—१ स्वर्णादि-रचित चक्र या मूर्ति में वैदिक विधान से अर्चा करनेवाले, २ आन्तरिक एवं बाह्य पूजा करनेवाले, ३ आन्तरिक पूजा में रत रहनेवाले, ४ अर्चनाधीन न होनेवाले।

'समयाचार' में 'पूर्व' की अपेक्षा 'उत्तर' श्रेष्ठ माने जाते हैं। जो योग में तल्लीन नहीं हैं, वे चक्र-विग्रह आदि में पूजा करते हैं। जिन्हें योग में थोड़ी गति प्राप्त हो गई है, वे आन्तरिक एवं बाह्य पूजन में लगे रहते हैं। जो सिद्ध-योगी हैं, वे आन्तरिक पूजा में तल्लीन रहते हैं। जो निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेते हैं, उनके मन से भेद-भाव समाप्त हो जाता है और उन्हें पूजन आदि की आवश्यकता नहीं रहती। उनके सभी कार्य देवी की पूजा ही हैं। ऐसे 'समयाचारी' योगीश्वर जीवन्मुक्त होकर 'सादाख्य' तत्त्व का अनुचिन्तन करते हुए आत्मा में ही तल्लीन रहते हैं। अनकी समस्त पूजा सहस्र-दल-कमल में होती है। उनके मत में बाह्य पूजा नहीं है।

'श्री-चक्रार्चन' में दीक्षित साधकों का ही अधिकार है। दीक्षा तीन प्रकार की है--१ आणव, २ शाक्त और ३ शाम्भव। 'आणव - दीक्षा' में देवता का पूजन, तर्पण, हवन आदि होता है। 'शक्ति-दीक्षा' में गुरु-शिष्य को शक्ति प्रदान कर शिष्य पर अनुग्रह करता है। 'शाम्भवी दीक्षा' में केवल गुरु-कृपा रहती है। 'आणवी' और 'शक्ति' दीक्षा कौलों के लिए तथा 'शाम्भवी दीक्षा' समय - मतवालों के लिए विहित है।

'श्री चक्रार्चन' के सम्बन्ध में यहाँ शास्त्रीय दृष्टि से कुछ रहस्य बताए गए हैं। पूर्ण ज्ञान के लिए गुरु-मुख से जानना चाहिए। 'श्री चक्रार्चन' में गुरु का बड़ा महत्त्व है। गुरु के बिना साधक को सफलता नहीं मिलती। 'श्रीचक्रार्चन' से सांसारिक वैभव एवं पारलौकिक शक्ति—सभी कुछ प्राप्त होता है।

श्री-चक्र रहस्य

श्री-चक्र के चक्रों का परिचय, साधना-क्रम, लेखन-विधान हेतु उपयोगी पुस्तक

मूल्य १५.०० रु०

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल विरचित

दुर्गा-स्तुति

दुर्गे ! कराल - वदने वरदे भवानी, अम्बे सुरारि - हननी भव-दुःख-हन्त्री ।
हे दैत्य-वंश-तरु-मूल-विनाशिनी माँ, काली करालि ! सुनिए विनती हमारी ।।१
ये हैं पुनीत नव-रात्र समाप्त भी हैं, पूजा कहाँ सविधि हो जननी ! बताओ ।
अत्यन्त ही कठिन है सब वस्तु पाना, सामान श्रेष्ठ तुमको प्रिय जो रहा है ।।२
हा हन्त ! तीर्थ मिलना अति ही असाध्य, त्यों शुद्धि भी विमल वस्तु अनूप भोज्य ।
पीयूष-पूरित तृतीय न पञ्चमादि, हों प्राप्त माँ ! कठिन कार्य यहाँ दिखाता ।।३
है भी नहीं जननि ! साधक विज्ञ कोई, होता यहाँ मददगार करूँ स्व-पूजा ।
या मैं कहूँ निज कथा सुनिए भवानी, हा ! है अभाव मुझमें सुठि भक्ति का हो ।।४
क्यों मैं करूँ न चित दे सब भाँति तेरी, पूजा गुलाब-कुसुमादिक से अनूठी ।
गेंदा जुही बकुल पङ्कज चारु बेला, हैं पुष्प सुन्दर सभी मिलते अनेकों ।।५
मुद्रा भली विमल माखन शुद्ध दूध, मीठा दही सुघर मोदक भी मलाई ।
पेड़े सुस्वादु बढ़िया हलुआ जलेबी, बर्फी सँदेश खुर्मा मिलते सभी तो ।।६
क्या त्यों नहीं सुलभ हैं नमकीन चीजें, आलू रसाल-चटनी प्रिय दाल-मोट ?
औ हैं बड़े चरफरे अति ही कचालू, भण्टे भले सहित सेम हरी पलाकी ।।७
हैं भी मिलें तदपि नीच मलीन चित्त, आसक्त है विषय में कुछ भी न ठीक ।
लाके सकूँ कर सु-पूजन अम्ब ! तेरा, है किन्तु केवल नहीं धिक् ! हाय भक्ति ।।८
आत्माभिमान-मद में भ्रमता फिरूँ मैं, लज़्जा नहीं तनिक भी, न हया जरा है ।
हा ! है कुभाव मन में यह तो समाया, मैं एक हूँ जगत् में बुध सत्य नान्य ।।९
विद्या - निधान हम पण्डित पूजनीय, भू-देव श्रेष्ठ अति ज्ञान सही हमारा ।
आचारवान यदि पण्डित व्यक्ति कोई, तो हैं हमीं बस यही कहता फिरूँ मैं ।।१०
मैं नीच दास बनता हत ज्ञान - हीन, अत्यन्त घोर अति ओज-समेत गर्व ।
कैसे करूँ तव सु-पूजन भक्ति-युक्त, दुर्गे, करालि ! जब है विषयाक्त चित्त ।।११
मैं तो कुपूत अति पामर दुष्ट अम्ब, माता समान करती सबसे सनेह ।
माँ! कीजिए अब तुरन्त क्षमा मुझे तू, मैं हूँ निकृष्ट अधमाधम दुष्ट ही हूँ ।१२

गायत्री और महा-मृत्युंजय मन्त्र

'गायत्री-मन्त्र' का अर्थ करने के पहले हमें 'गायत्री'—शब्द की व्युत्पत्ति, उसके चौबीस अक्षर और **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** को समझ लेना आवश्यक है। 'गायत्री'-शब्द का अर्थ प्राण, त्राण-तत्त्व है। चौबीस अक्षरों का अर्थ, चौबीस तत्त्वों से बने हुए शरीर और उसकी जीवनी-शक्ति का सङ्केत तथा बोधन है। **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** का अर्थ बौद्धिक जाग्रति और संशोधन है। इसका समन्वयार्थ है—**शरीर--प्राण और बौद्धिक-शक्ति का विकास, रक्षण, संशोधन, अमृतीकरण।**

भगवान् शङ्कराचार्य ने 'गायत्री'-शब्द का अर्थ प्राण, त्राण-तत्त्व किया है। 'प्राण' का अर्थ जीवन और 'त्राण' का अर्थ उसका मृत्यु से छुटकारा है। **'सोहं'** में आए 'स' से मुक्ति और 'अहं' में स्थिति है। 'प्राण' की बोली का नाम **'सोहं'** है। इसमें 'स' का अर्थ शरीर-क्षेत्र और उसकी जीवनी-शक्ति है। 'हं' का अर्थ कपाल-क्षेत्र और उसका अमर-पन है। इनका अर्थ हुआ मृत्यु से छूटकर अमर हो जाना। यही 'प्राण' का सच्चा त्राण और उत्थान है—**'प्रणवात् इति प्राणः'**।

ॐ के प्रवाह का अर्थ 'प्राण' है। 'प्राण' की मुक्ति का नाम 'ॐ' है। बृहदारण्यक उपनिषद् में 'प्राण' को प्रवाह-गति, जीवन-धारा कहा है। प्राण – जीवन-धारा की गति, प्रवाह को मृत्यु, नाश, पतन से बचाती है—अतः यह 'गायत्री' कहलाती है। इस प्रकार मृत्यु से छुड़ाकर अमर बनाना ही 'गायत्री' शब्द का तात्त्विक शब्दार्थ है न कि अमर को अमर बनाना।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं–यह पद 'गायत्री' का प्रथम पाद है। इसका अर्थ शरीर और उसकी जीवन-शक्ति का बोध, सम्बन्ध तथा प्राप्ति की प्रेरणा है। यह आठ अक्षर का पद त्रिलोकी का सार है। भूमि से अन्तरिक्ष तक का यह व्यापक जीवन-तत्त्व है। जहाँ तक पाँच तत्त्वों और उसके जीवन की गति का अस्तित्व है, यह उस सबका प्रसवक, प्रसारक, विकाशक है। 'वरेण्यं'—प्राप्तव्य, प्रापनीय तत्त्व है। इसका जीवन के साथ प्रकाश और सूर्य-सा सम्बन्ध है। जो साधक इसको पा जाता है, जान जाता है—वह भूमि और अन्तरिक्ष को पाकर परम तृप्त, मुक्त हो जाता है।

भर्गो देवस्य धीमहि—यह 'गायत्री' का दूसरा पाद है। इसमें भी आठ ही अक्षर हैं। यह ज्ञान-त्रयी, विद्या-त्रयी, नेत्र-त्रयी, कोष-त्रयी का सार है। यह आधि-भौतिक, आधि-दैविक और आध्यात्मिक समन्वयीक प्रकाश—१ विद्या, २ नेत्र और ३ कोषों के ध्यान की ओर अग्रसर करता है। यह पाद साधक को बताता है कि तीन तरह के मार्ग का ध्यान करना आवश्यक है। यही सफलता का रहस्य है। जो साधक ध्यान से इस 'प्रकाश-त्रय' को प्राप्त कर लेता है, जान लेता है--वह सकल जीवन को प्राप्त हो जाता है।

धियो यो नः प्रचोदयात्—यह 'गायत्री' का तीसरा पाद है। इसमें भी आठ ही अक्षर हैं। यह पाद-मात्र 'गायत्री' का सार—प्राण, अपान, ध्यान का तत्त्व है। जीवन की कसौटी है। बुद्धि-ग्राह्य अतीन्द्रिय की ज्योति है। ऋतम्भरा के दिव्य तत्त्व का प्रसार है। प्राण, अपान, व्यान का बीज है। अनुभव का सत्य प्रत्यक्षीकरण है। सबसे ऊपर का तपः-प्रकाश है। जो साधक इस सबको पा जाता है, अनुभव कर लेता है—वह श्री, यश और त्री-प्रकाश से जगमगाने लगता है। वह स्वतः ही सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि 'गायत्री' में उन्हीं त्रि-नेत्रों की व्याख्या त्रि-तेज नाम से की गई है, जिसको 'महा-मृत्युञ्जय मन्त्र' में त्रि-नेत्र कहा गया है और जो मानव जीवन के त्रि-वर्ग-दृष्टा और प्रकाशक हैं। 'वृहदारण्यक उपनिषद्' में कहा गया है कि 'गायत्री'--रज से ऊपर अनुभव-जन्य सत्य में चौथे पद में प्रतिष्ठित है। निश्चय ही यह सत्य नेत्र है, दिव्य प्रकाश है। समष्टि दृष्टि से एक है। शुद्ध अहं है और भौतिक दृष्टि से यह तीन (१ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ कारण) है और मुक्तात्मा से अपदि है।

इस त्रि-तेज, त्रि-नेत्र से युक्त होकर जीना ही 'गायत्री' का उप-स्थान है। उप-स्थान का अर्थ है सफलता-युक्त खड़ा होना। त्रि-नेत्रात्मक तेज (भर्ग) को ही तत्त्व-ज्ञान की परिभाषा में **'महा-वाक्य'** कहते हैं। जैसे तत् से अयं में, 'अयं' से प्रज्ञान में, प्रज्ञान से अहं में। चौथे पद में **'अहं ब्रह्मास्मि'** में जाना है। यही मृत्यु-जय, प्राण, त्राण, महा-वाक्यात्मक गायत्री है। यही वह, यह की पूर्णता है, जिसको पाकर अहं 'पूर्ण' शेष रह जाता है—

पूर्णमदं, पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

नवार्ण-प्रकाश गीतिका

ओं - कार आदि मन्त्रों की ईश्वरी तुम्हीं हो।
ऐं - अम्ब ! अर्ध मात्रा शिर पर धरी तुम्हीं हो।
ह्रीं - विन्दु - नादिनी हो कामेश्वरी रमा हो।
क्लीं - शून्य रूपवाली मेधा दया क्षमा हो।
चा - म्पेय गौर आभा - युत देह - धारिणी हो।
मु - ण्डादि दानवों की प्राणापहारिणी हो।
डा - ढें कराल धरती तुम उग्र - कालिका हो।
यै - सी विभक्ति - रूपी तुम शब्द - पालिका हो।
वि - द्या तुम्हीं परा हो आनन्द - कारिणी हो।
चे - तन हो हरि-हरादिक के नाम - धारिणी हो।

ॐ विद्या में से 'वित्' निकलता है। आगे चेतन के 'च' का संयोग पाकर 'वित्' का 'त्', 'च' में बदल जायगा, तो 'विच्चे' बनता है।

नवार्ण मन्त्र की साधना

भगवती चामुण्डा का महा-मन्त्र नव अक्षरों का है और इसके सेवन से भुक्ति एवं मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं। इसी मन्त्र के प्रभाव से हरण हुए राज्य को राजा सुरथ पुनः प्राप्त कर मरने के पश्चात् सार्व-भौम राज्य-भोक्ता मनु हुए थे और समाधि वैश्य ने सांसारिक बन्ध-नाशक ज्ञान प्राप्त किया था। मार्कण्डेय-पुराणोक्त तीनों देवी-चरित जिस 'नवार्ण-मन्त्र' के जपने से फल देते हैं, वह इस प्रकार है--

वाक् (**ऐं**), काम (**क्लीं**), लज्जा (**ह्रीं**), बीजान्ते (इन बीजों के अन्त में) **चामुण्डायै पदं-वदेत्** '**चामुण्डायै**'—यह पद कहे। '**विच्चे**' सहित यह नव अक्षरों का मन्त्र है, जो शक्ति का उत्तमोत्तम मन्त्र है—

मन्त्र : ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

'**नवार्ण-मन्त्र**' की बड़ी महिमा है। इस मन्त्र के गूढ़ार्थ को गुप्तावतार बाबाश्री ने बड़ी सरल भाषा में स्पष्ट किया है, जो 'मुमुक्षु-मार्ग' (रहस्योद्घाटन-खण्ड) नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। यहाँ इस मन्त्र को साधना करने की विधि प्रकाशित की जा रही है। इस विधि में जो 'न्यास-विधान' दिया गया है, वह दुर्लभ है। 'दुर्गोपासना-कल्पद्रुम', 'दुर्गार्चन-सृति' और 'दुर्गार्चन-पद्धति' जैसी कृतियों में भी ऐसा विधान देखने को नहीं मिलता।

'**नवार्ण-मन्त्र**' का ज्ञान प्राप्त कर उसकी साधना करनेवाला सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होता है। '**नवार्ण-मन्त्र**' और उसका साधन-विधान निम्न प्रकार है—

'**नवार्ण - मन्त्र**' के ऋषि ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे गए हैं। मुनियों ने इसके छन्द गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप् बताए हैं। देवता महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती हैं। नन्दा, शाकम्भरी, भीमा इसकी शक्तियाँ हैं। रक्त-दन्तिका, दुर्गा, भ्रामरी इसके बीज हैं। अग्नि, वायु और सूर्य इसके तत्त्व हैं। ऋग्, यजु, साम—त्रिवेदोद्भव इसके फल हैं। सर्वाभीष्ट-सिद्धि के लिए इसका विनियोग है।

ऋषि, छन्द और देवता का शिर, मुख और हृदय में क्रमशः न्यास करें। स्तनों में शक्ति-बीजों का तथा पुनः हृदय में तत्त्वों का न्यास करना चाहिए। एक-एक करके तीनों बीजों से, फिर चार से, फिर दो से, फिर पूर्ण मन्त्र से 'षडङ्ग-न्यास' करना चाहिए।

ब्रह्म-रन्ध्र में, नेत्र-युगल में, दोनों कानों में, दोनों नासा-रन्ध्रों में, मुख में और गुह्य में मूल-मन्त्र के एक-एक अक्षर के आदि और अन्त में क्रमशः '**ॐ**' और '**नमः**' जोड़ कर न्यास करना चाहिए। फिर आठ बार मूल-मन्त्र से 'व्यापक-न्यास' करना चाहिए। इस प्रकार आवश्यक न्यास करके समाहित मन से ध्यान करना चाहिए। '**नवार्ण-मन्त्र**' के एकादश न्यास अधिक फल-दायक हैं, जिनका वर्णन आगे किया गया है। न्यास करने के पश्चात् महा-काली, महा-लक्ष्मी और महा-सरस्वती का ध्यान कर 'मानस-पूजन' करना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि '**नवार्ण-मन्त्र**' के जो बीजाक्षर यहाँ दिए गए हैं, उनमें से प्रत्येक का अलग-अलग षट्-चक्रों के पत्रों पर—अक्षरों का ध्यान करते हुए जप करने से, जप-काल में ही विलक्षण अनुभूतियाँ जप-कर्ता को होती हैं। साथ ही उसके शरीर में विशेष रूप की स्फूर्ति और मन में उल्लास उत्पन्न होता है, जो कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में बना रहता है।

प्रत्येक अक्षर का ६-६ लाख (कुल ८१ लाख) जप करने के बाद, विनियोगादि करके नवार्ण का न्यास कर ४ लाख 'जप' का 'पुरश्चरण' करना चाहिए। नवार्ण का 'न्यास' करने से पूर्व, यदि सम्भव हो, तो **'नवार्ण-यन्त्र'** का अर्चन भी विधि-पूर्वक कर लेना चाहिए।

वीजाक्षर-जप-प्रक्रिया–

वीजाक्षर	स्वरूप	चक्र-स्थान, जहाँ ध्यान-पूर्वक ६-६ लाख जप करना है
ऐं	इन्दु-समान दीप्ति	विशुद्धि-चक्र, बारहवाँ पत्र; स्वाधिष्ठान तीसरा पत्र।
ह्रीं	सूर्य-समान तेज	आज्ञा - दायाँ, स्वाधिष्ठान पाँचवाँ, विशुद्धि चौथा स्वाधिष्ठान तीसरा पत्र।
क्लीं	अग्नि-समान रूप	अनाहत पहला पत्र, स्वाधिष्ठान छठा, विशुद्धि चौथा, स्वाधिष्ठान तीसरा पत्र।
चा	जाम्बुनद-समान कान्ति	अनाहत छठा, विशुद्धि दूसरा पत्र।
मु	रक्त-समान आभा	स्वाधिष्ठान तीसरा, विशुद्धि पाँचवाँ पत्र।
ण्डा	सुनील-समान रूप	मणिपुर तीसरा, विशुद्धि पाँचवाँ पत्र।
यै	कृष्ण-समान कान्ति	स्वाधिष्ठान चौथा, विशुद्धि बारहवाँ पत्र।
वि	पाण्डुर-समान वर्ण	मूलाधार पहला, विशुद्धि तीसरा पत्र।
च्चे	धूम्र-समान वर्ण	अनाहत–छठा, विशुद्धि–ग्यारहवाँ पत्र।

उक्त प्रकार षट् - चक्र के निर्दिष्ट पत्रों (दलों) पर वीजाक्षर का ध्यान कर, 'अक्ष - माला' अथवा गुरु द्वारा प्रदत्त अन्य माला पर, वीजाक्षर का ६ लाख जप करना चाहिए। 'जप' के बाद निम्न विनियोगादि करे—

विनियोग––**ॐ अस्य नवार्ण-मन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषयः, गायत्री - उष्णिक् - अनुष्टुप् छन्दांसि, महा - काली - महा - लक्ष्मी - महा - सरस्वती देवताः, नन्दजा-शाकम्भरी-भीमा शक्तयः, रक्त-दन्तिका-दुर्गा-भ्रामर्यो वीजानि, ह्रीं कीलकं, अग्नि - वायु - सूर्याः तत्त्वानि, अमुक - कार्य - सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि-न्यास––**ॐ ब्रह्म-विष्णु-महेश्वर-ऋषिभ्यो नमः शिरसि। ॐ गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-छन्दोभ्यो नमः मुखे। ॐ महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-देवताभ्यो नमः हृदि। ॐ नन्दजा-शाकम्भरी-भीमा-शक्तिभ्यो नमः दक्ष-स्तने। ॐ रक्तदन्तिका-दुर्गा-भ्रामरी-वीजेभ्यो नमः वाम-स्तने। ह्रीं कीलकाय नमः नाभौ। ॐ अग्नि-वायु-सूर्य-तत्त्वेभ्यो नमः नेत्रयोः। ॐ अमुक-कार्य-सिद्धयर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।**

१ मातृका - न्यास––इस न्यास के करने से देवता की सारूप्यता साधक को प्राप्त होती है—**'ॐ ऐं अं आं कं खं गं घं ङं इं ईं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं उं ऊं चं छं जं झं ञं ऋं ॠं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं लृं टं ठं डं ढं णं लॄं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डा एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्। ॐ यै ओं पं फं बं भं मं औं नेत्र-त्रयाय वौषट्। ॐ विच्चे अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट्।**

२ सारस्वत-न्यास--(इस न्यास से साधक की जड़ता नष्ट होती है)--'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः' इस षडक्षर मन्त्र का न्यास कनिष्ठा से लेकर अस्त्र तक के १५ स्थानों में करे। यथा--ॐ-६ कनिष्ठयोः, २ ॐ-६ अनामिकयोः, ३ मध्यमयोः, ४ तर्जन्योः, ५ अंगुष्ठयोः, ६ करतल-करपृष्ठयोः, ७ पृष्ठे, ८ मणि-बन्धे, ९ कूर्परे, १० हृदये, ११ शिरसि, १२ शिखायाम्, १३ कवचे, १४ नेत्र-त्रये, १५ अस्त्रे। प्रत्येक स्थान का स्पर्श कर उक्त षडक्षर मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।

३ मातृ-गण-न्यास--(इस न्यास से साधक त्रैलोक्य-विजयी होता है) ॐ ह्रीं ब्राह्मी पूर्वतो मां पातु। ॐ ह्रीं माहेश्वरी आग्नेय्यां मां पातु। ॐ ह्रीं कौमारी दक्षिणे मां पातु। ॐ ह्रीं वैष्णवी नैऋते मां पातु। ॐ ह्रीं वाराही पश्चिमे मां पातु। ॐ ह्रीं इन्द्राणी वायव्ये मां पातु। ॐ ह्रीं चामुण्डे उत्तरे मां पातु। ॐ ह्रीं महा-लक्ष्मी ऐशान्ये मां पातु। ॐ ह्रीं व्योमेश्वरी ऊर्ध्वे मां पातु। ॐ ह्रीं सप्त-द्वीपेश्वरी भूमौ मां पातु। ॐ ह्रीं कामेश्वरी पाताले मां पातु।

४ नन्दजादि - न्यास--(इस न्यास के करने से साधक वृद्धावस्था और मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है)--ॐ नन्दजायै कमलांकुश-मण्डितायै नमः पूर्वाङ्गे मां पातु। ॐ रक्त-दन्तिकायै खड्ग-पात्र-हस्तायै नमः दक्षिणे मां पातु। ॐ शाकम्भर्यै पुष्प-पल्लव-संयुक्तायै नमः पृष्ठे मां पातु। ॐ दुर्गायै धनु-र्बाण-हस्तायै नमः वामाङ्गे मां पातु। ॐ भीमायै शिरः-पात्र-करायै नमः मस्तकादि - चरणान्तं मां पातु। ॐ भ्रामर्यै चित्र-कान्त्यै नमः पादादि-मस्तकान्तं मां पातु।

५ ब्रह्मारण्य - न्यास--(इस न्यास से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है)--ॐ ब्रह्मणे नमः पादादि-नाभि-पर्यन्तं सदा मां पातु। ॐ जनार्दनाय नमः नाभौ विशुद्धि-पर्यन्तं मां पातु नित्यं। ॐ रुद्राय त्रिलोचनाय नमः ब्रह्म-रन्ध्रान्ते नेत्रयोः मां पातु। ॐ हंसः हंसाय नमः पादयोः मां पातु। ॐ गरुड़ाय नमः करयोः मां पातु। ॐ वृषभाय नमः नेत्रयोः मां पातु। ॐ गजाननाय नमः सर्वाङ्गे मां पातु। ॐ आनन्द-मय परमात्मने नमः परापर-देह-भागे मां पातु।

६ महा-लक्ष्म्यादि-न्यास--(इस न्यास द्वारा साधक को सद् - गति प्राप्त होती है)--ॐ महा-लक्ष्म्यै अष्टादश-भुजायै नमः मध्ये मां पातु। ॐ सरस्वत्यै अष्टादश-भुजायै नमः ऊर्ध्वं मां पातु। ॐ महा-काल्यै दश-भुजायै नमः अधः मां पातु। ॐ सिंहाय नमः हस्तयोः मां पातु। ॐ हंसाय नमः नेत्रयोः मां पातु। ॐ यमाय महिष-वाहनाय नमः पादयोः मां पातु। ॐ महेश-चण्डिकाभ्यां नमः सर्वाङ्गे मां पातु। ॐ महेश-चण्डिकाभ्यां नमः पृष्ठे मां पातु।

७ मन्त्र-वर्ण-न्यास--(इस न्यास के करने से साधक के रोगों का तुरन्त ही नाश होता है)--ॐ ऐं नमः ब्रह्म-रन्ध्रे। ॐ ह्रीं नमः दक्ष-नेत्रे। ॐ क्लीं नमः वाम-नेत्रे। ॐ चां नमः दक्ष - कर्णे। ॐ मुं नमः वाम-कर्णे। ॐ डां नमः दक्ष-नासा-पुटे। ॐ यै नमः वाम - नासा - पुटे। ॐ वि नमः मुखे। ॐ च्चे नमः पायौ।

८ देवी-न्यास--(इस न्यास से सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं)--ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे पादादि-ब्रह्म-रन्ध्रान्तं अष्ट-वारं न्यसेत्।

९ मन्त्र-व्यापक-न्यास--(इस न्यास से देवता का सान्निध्य प्राप्त होता है)--ॐ मस्तकादि-पादान्तं अष्ट-वारं। ऐं पादादि-मस्तकान्तं अष्ट-वारं। ह्रीं पूर्वे अष्ट-वारं। क्लीं दक्ष - भागे अष्ट-वारं। चामुण्डायै पृष्ठे अष्ट-वारं। च्चे वामे अष्ट-वारं न्यसेत्।

१० षडङ्ग-न्यास—(इस न्यास से त्रैलोक्य वशीभूत होते हैं)--**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे हृदयाय नमः। ॐ··· ··विच्चे शिरसे स्वाहा। ॐ·····विच्चे शिखायै वषट्। ॐ ···विच्चे कवचाय हुम्। ॐ·····विच्चे नेत्र-त्रयाय वौषट्। ॐ·····विच्चे अस्त्राय फट्।**

इसके बाद **'ऐं'** बीज को 'कृष्ण-वर्ण' का ध्यान करते हुए निम्न श्लोकों का पाठ कर सर्वाङ्ग में 'न्यास' करे--

'ऐं' खड्गिनी शूलिनी घोरा, गदिनी चक्रिणी तथा। शङ्खिनी चापिनी बाण - भुशुण्डी - परिघायुधा॥
सौम्या सौम्य - तराऽशेष - सौम्येभ्यस्त्वति - सुन्दरी। पराऽपराणां परमा, त्वमेव परमेश्वरी॥
यच्च किञ्चित् क्वचिद्-वस्तु, सदसद् वाऽखिलात्मिके! तस्य सर्वस्य या शक्तिः, सा त्वं किं स्तूयसे मया॥
यया त्वया जगत्-स्रष्टा, जगत्-पात्यत्ति यो जगत्। सोऽपि निद्रा-वशं नीतः, कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥
विष्णु - शरीर - ग्रहणमहमीशान एव च। कारितास्ते यतोऽतस्त्वां, कः स्तोतुं शक्ति-मान् भवेत्॥

अब **'ह्रीं'** बीज को 'सूर्य-सदृश कान्तिवाला' ध्यान करते हुए निम्न श्लोकों का पाठ कर पृष्ठ-भाग में 'न्यास' करे--

'ह्रीं' शूलेन पाहि नो देवि! पाहि खड्गेन चाम्बिके! घण्टा-स्वनेन नः पाहि, चाप-ज्या-निःस्वनेन च॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च, चण्डिके! रक्ष दक्षिणे! भ्रामणेनात्म - शूलस्य, उत्तरस्यां तथेश्वरि!॥
सौम्यानि यानि रूपाणि, त्रैलोक्ये विचरन्ति ते। यानि चात्यर्थ-घोराणि, तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥
खड्ग-शूल-गदादीनि, यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके! कर - पल्लव - सङ्गीनि, तैरस्मान् रक्ष सर्वतः॥

इसके बाद **'क्लीं'** बीज को 'स्फटिक की आभावाला' ध्यान करते हुए निम्न श्लोकों का पाठ कर दोनों स्तनों में 'न्यास' करे--

'क्लीं' सर्व - स्वरूपे सर्वेशे, सर्व - शक्ति - समन्विते! भयेभ्यस्त्राहि नो देवि! दुर्गे देवि! नमोऽस्तु ते॥
एतत् ते वदनं सौम्यं, लोचन - त्रय - भूषितम्। पातु नः सर्व-भूतेभ्यः, कात्यायनि! नमोऽस्तु ते॥
ज्वाला-करालमत्युग्रमशेषासुर-सूदनम्। त्रिशूलं पातु नो देवि! भीतेर्भद्र - कालि! नमोऽस्तु ते॥
हिनस्ति दैत्य - तेजांसि, स्वनेनापूर्य या जगत्। सा घण्टा पातु नो देवि! पापेभ्यो नः सुतानिव॥
असुरासृग्-वसा-पङ्क-चर्चितस्ते करोज्ज्वलः। शुभाय खड्गो भवतु, चण्डिके! त्वां नताः वयम्॥

कर-न्यास--**ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।**

अङ्ग-न्यास--**हृदयाय नमः। शिरसे स्वाहा। शिखायै वषट्। कवचाय हुम्। नेत्र-त्रयाय वौषट्। अस्त्राय फट्।**

तदनन्तर **'मूल-मन्त्र'** से आठ बार 'व्यापक न्यास' करे।

अक्षर-न्यास--**ॐ ऐं नमः शिरसि। ॐ ह्रीं नमः नेत्रयोः। ॐ क्लीं नमः ललाटे। ॐ चां नमः भ्रुवो। ॐ मुं नमः कर्णयोः। ॐ डां नमः गण्डयोः। ॐ यैं नमः मुखे। ॐ विं नमः दन्त-पंक्त्योः। ॐ च्चें नमः जिह्वायां। ॐ ऐं नमः स्कन्धयोः। ॐ ह्रीं नमः कण्ठे। ॐ क्लीं नमः भुजयोः। ॐ चां नमः हृदि। ॐ मुं नमः पार्श्वयोः। ॐ डां नमः पृष्ठे। ॐ यैं नमः नाभौ। ॐ विं नमः लिङ्गे। ॐ च्चें नमः कट्योः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः गुह्ये। ॐ ऐं ···विच्चे नमः करयोः। ॐ ऐं···विच्चे नमः पादयोः। ॐ ऐं विच्चे नमः सर्वाङ्गे।**

दिङ्-न्यास **ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः । ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैऋत्यै नमः । ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः । ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ विच्चे ईशान्यै नमः । ॐ ऐं···विच्चे ऊर्ध्वायै नमः । ॐ ऐं···विच्चे भूम्यै नमः ।**

ध्यान— खड्गं चक्र-गदेषु - चाप - परिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः,
शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्ग-भूषावृताम् ।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाद-दशकां सेवे महा - कालिकाम्,
यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ।।१

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु - कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकाम्,
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म-जलजं घण्टां सुरा-भाजनम् ।
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम्,
सेवे सैरिभ-मर्दिनीमिह महा-लक्ष्मीं सरोज-स्थिताम् ।।२

घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख - मुसले चक्रं धनुः सायकम्,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त-विलसच्छीतांशु-तुल्य-प्रभाम् ।
गौरी-देह - समुद्भवां त्रिजगतामाधार - भूतां महा—
पूर्वामत्र सरस्वतीमनु-भजे शुम्भादि-दैत्यार्दिनीम् ।।३

मानस पूजन—**ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं विलेपयामि नमः** — **अंगुष्ठ-कनिष्ठाभ्यां**
ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पाणि समर्पयामि नमः — **अंगुष्ठ-अनामाभ्यां**
ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि नमः — **अंगुष्ठ-मध्यमाभ्यां**
ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि नमः — **अंगुष्ठ-तर्जनीभ्यां**
ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्य निवेदयामि नमः — **अंगुष्ठ-अनामाभ्यां**
ॐ सं सोमात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि नमः — **सर्वांगुलीभिः**

'नवार्ण-मन्त्र' का पुरश्चरण चार लाख जप से होता है । जप के दशांश से पायसान्न द्वारा **'होम'** करे और उसके दशांश से **'मार्जन'** कर उसका दशांश **'ब्राह्मण-भोजन'** कराए । **'ब्राह्मण-भोजन'** के साथ ही **बटुकों** (८-९ वर्ष के बालक) तथा **कुमारी कन्याओं** का पूजन कर उन्हें भी भोजन - वस्त्र - दक्षिणा से यथा - शक्ति प्रसन्न करे और उनके पैर छूकर उन्हें प्रणाम करे तथा आशीर्वाद - स्वरूप उनके हाथों से अपनी पीठ पर थपकी ले । 'जप' के अन्त में **'जप-समर्पण'** निम्न मन्त्र से करे—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं, गृहाणास्मत् कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्-प्रसादान्मयि स्थिरा ।।

मन्त्र-जप-विधि

सद्-गुरु कृपा-पूर्वक शब्द-ब्रह्म-रूप मन्त्र का उपदेश देते हैं। 'मन्त्र' ही मन-रूपी मत्त गज-राज को वश में करने का सार्थक अंकुश-शास्त्र है। **शब्द, २ अक्षर, ३ स्पन्दन और ४ अनुच्चार्या मात्रा**—ये मन्त्र को क्रमशः चार अवस्थाएँ हैं। श्रीसद्-गुरु द्वारा प्राप्त वैखरी शब्द को इस अन्तिम परावस्था में प्राप्त कराना ही 'साधन-पथ' है। यह श्रीसद्-गुरु के उपदिष्ट मार्ग पर '**मन्त्र-जप**' द्वारा ही होता है। '**मन्त्र-जप**' ही सर्व-सुगम साधना और सिद्धि का मूल है। 'यामल'-वचन है—'**अन्धकार से व्याप्त घर में दीपक के द्वारा घर दिखाई देता है। इसी प्रकार 'मन्त्र' के द्वारा आत्मा का दर्शन होता है।**'

'मन्त्र' की सर्वोत्तम 'जप'-विधि के लिए कबीर साहब कहते हैं—'**साँसो साँसा नाम जपु अरु उपाय कछु नाहिं।**' इस वचन में साँस पर साँस का रहस्य यह है कि विकल अवस्था में 'मन्त्र'-जप न किया जाए। जब तक श्वास दृढ़ होकर स्थिर न हो जाए, तब तक एक-एक साँस के साथ जप करे। यह अवस्था तभी आ सकती है, जब मन में धैर्य और आनन्द हो। इसके लिए 'आगम'-वचन है—'**श्वास के मार्ग में मन को लगावे।**' श्वास-मार्ग में मन को लगाने से, प्राण की गति यथा-समय स्थिर होने लगेगी और श्वास-मार्ग में नियोजित 'मन', सहज ही में 'प्राण' की गति स्थिर कर 'प्राण' को '**नासाभ्यन्तर-चारी**' बना देगा। तब 'प्राण' के वृथा व्यय न होने से शरीर में ओज-बल की वृद्धि होगी और आनन्द की मात्रा में भी वृद्धि होगी। इस रुके हुए 'प्राण' को जहाँ पर भी स्थिर किया जाएगा, वहीं पर 'स्फुरणा' उत्पन्न हो जाएगी।

यह 'स्फुरणा' ही देहस्थ षट्-चक्रों में धारा-प्रवाह-रूप से 'वैखरी-मन्त्र-जप' को अन्तर्मुखी करती है और 'मध्यमा' का उदय होता है। 'प्राण' और 'मन' परस्पर सम्बद्ध हैं। एक के स्थिर होते ही दूसरा स्थिर हो जाता है।

'प्राण' और 'अपान' के योग को 'वायवी-शक्ति' कहते हैं। इसका स्थान 'मूलाधार' है। 'योगिनो' और 'खेचरी' नामक श्वासोच्छ्वास वायु - रूप में 'मूलाधार - पद्म' पर बारह अंगुल ऊँचे स्थित हैं। श्वास-द्वारा 'प्राण' के विचलित होने से 'चित्त' विकल रहता है। अतः 'चित्त' को स्थिर करने के लिए 'प्राण'की गति रुद्ध करके 'मन्त्र-जप' करना चाहिए। इसके लिए अभ्यास जरूरी है। 'प्राण' ही विषय, वृत्ति आदि सबका मुख्य आहार है। इसी को खा-पी कर सब शत्रु शरीर में नित्य स्थिर रहते हैं। अगर इनका खाना बन्द हो जाए—तो ये स्वयं भाग जाएँ और अन्तःशक्ति अर्थात् 'कुण्डलिनी' चैतन्य हो जाए।

'मन्त्र'-रूप 'शब्द-ब्रह्म' अन्तर्मुखी होने पर स्पन्दन आदि रूप में प्रतीत होता है। 'पूरक-योग' से '**पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा**'—प्राण का सञ्चय और कुम्भक से स्थिरता की प्राप्ति तथा अन्तर-रेचक से सुषुम्णा में प्रवेश—यही 'शक्ति' को चैतन्य करने का उपाय है। पूरक द्वारा शरीर में 'प्राण' का सञ्चय और कुम्भकावस्था में अपान के सङ्घर्ष से अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। इसी अग्नि से 'मन्त्र-शक्ति' जागृत होती है। कबीर साहब कहते हैं—

समुद्र लागी आगि नदियाँ जलि कोयला भईं। उठ कबीरा जाग मच्छी बिरछा चढ़ गईं।

अर्थात् प्राण-अपान के सङ्घर्ष में प्रदीप्त अग्नि द्वारा आत्म-शक्ति चैतन्य हुई और इडा-पिङ्गला आदि को प्राण-रूपी आहार न मिला। इससे विषय, वृत्तियाँ आदि जल गईं और आत्म-शक्ति कुल-वृक्ष सुषुम्णा-पथ से मेरु-दण्ड के शिखर 'सहस्रार' पर चढ़ गईं।

उ-प-यो-गी प्र-का-श-न

कुल चूड़ामणि तन्त्रम्

(हिन्दी अर्थ सहित)

मूल्य १५-०० रु०

प्राण-तोषिणी तन्त्र

भाग १ : सर्ग-काण्ड एवं धर्म-काण्ड, मूल्य ३५-००

भाग २ : अर्थ-काण्ड एवं काम्य-काण्ड, मूल्य ३५-००

भाग ३ : भक्ति-काण्ड, मूल्य २०-००

श्रीगणेश, शिव, विष्णु, महा-विद्या, कुमारी-पूजा विषयक अपूर्व विवरण

कोकिलार्णव तन्त्र

(हिन्दी अर्थ सहित)

मूल्य १०-०० रु०

श्री गुरु तन्त्र

(हिन्दी टीका सहित)

मूल्य ५) रु०

रजि० सं० ३२६८१/५७] सितम्बर, १९९१ [रजि० सं० ए० डी० ६६

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक : श्रीऋतशील शर्मा, एम० ए०

श्रीतारा-कल्पतरु

भगवती तारा-साधना-क्रम, श्रीभक्ति-सर्वस्व श्रीतारा-सहस्रनाम-स्तोत्र

एवं

भगवती तारा के दुर्लभ हस्त-लिखित साहित्य का विवरण

मूल्य १५-०० रु०

सप्त-श्लोकी चण्डी
अथवा
सप्त-श्लोकी दुर्गा
(मन्त्रात्मक विधान सहित)

मूल्य ३-००

श्रीश्रीबाला कल्पतरु

श्रीलघु-स्तव-राज, पञ्चाक्षरी मन्त्र, बाला-पटल

एवं

श्रीबाला-गर्भित श्री-यन्त्र

मूल्य १५-०० रु०